वल्लभस्य हितं वचः

पाठावली

प्रकाशक

श्रीपुष्टिसंस्कार संस्थान
मोटी हवेली-जूनागढ

प्रकाशक : श्रीपुष्टिसंस्कार संस्थान
मोटी हवेली, जूनागढ
गुजरात - ३६२००१
फोन : (०२८५) २६२११११
website : www.pushtisanskar.org

प्रथम संस्करण : विक्रम संवत् २०७०
सप्टेम्बर - २०१४

प्रति : ५०००

प्रकाशन सहयोग : रु. ५०

मुद्रक : मेट्रो ऑफसेट, जूनागढ

प्राप्तिस्थान :

(१) श्रीपुस्तक वितरण केन्द्र, मोटी हवेली - जूनागढ.
फोन. (०२८५) २६२११११

(२) श्रीगोकुलेशजी बेठकजी, बस स्टेन्ड के पास, जूनागढ.
फोन. (०२८५) २६३०४००

(३) श्रीवल्लभ गोशाला, वाडला. फोन. (०२८७२) २५७२९५

(४) श्रीवल्लभाचार्य गुरुकुल, चोकी - सोरठ.
फोन. (०२८५) २६८८१८०

(५) 'श्रीव्रजरज' - ३/९ कोर्नर, बालमुकुन्द प्लोट, सिस्टर निवेदिता स्कूल के पीछे, निर्मला रोड, राजकोट.
फोन. (०२८१) २५८५८८१

(६) श्रीपुरुषोत्तमलालजीकी हवेली, केशोद.
भगतभाई - मो.९४२८६ २५७६७

(७) मुकेशभाई भायाणी - सूरत. मो. ९८२५० ९१२६५

(८) श्रीवल्लभाचार्य होस्पिटल, गिरिकन्दरा बंगलो, वल्लभाचार्य चोक, मणीनगर, अमदावाद- मो.९९०९४ २६६९६

(९) भूपतभाई उकाणी - उपलेटा. मो. ९८९८८ ८७५३४

(१०) 'जय खोडियार' टायर एजन्सी, स्वाति चोक, बस स्टेन्ड रोड,- धोराजी. भरतभाई लक्कड - मो. ९४२६४ ८०४१५

।। श्रीदामोदरमदनमोहनौ प्रभू विजयेते ।।
।। श्रीवल्लभाधीशो जयति ।। ।। जयति श्रीविठ्ठलेश्वरः ।।

शुभाशंसा

'सर्वोद्धारप्रयत्नात्मा कृष्णः प्रादुर्बभूव ह' हमारे प्रभु; सभी दैवी जीवों के उद्धार के लिए प्रकट हुए हैं. निःसाधन-सुसाधन-दुष्टसाधन सभी प्रकार के जीवों का उद्धार करने में प्रभु समर्थ हैं. प्रभुकृपा से हम पुष्टिजीवों का सुसाधन में अङ्गीकार है. एतदर्थ भगवदाज्ञा से हम पुष्टिजीवों के लिए श्रीमहाप्रभुजी ने पुष्टिभक्तिमार्ग प्रकट किया है. पुष्टिमार्ग में हमारे कल्याण का एकमात्र आधार श्रीमहाप्रभुजी की वाणी ही है.

यह समग्र सृष्टि प्रभु की क्रीडा है. सभी जीव प्रभु के अंश हैं. अतः जीव का कल्याण किसमें है यह प्रभु एवं उनके हार्द को जानने वाले प्रभु के प्रिय हमारे श्रीवल्लभ के अतिरिक्त कौन जान सकता है !

वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि ।
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम् ।।

की सारभूत श्रीवल्लभगीता (षोडशग्रन्थ) हमारे समग्र जीवन को स्वस्थ दृष्टि प्रदान कर भगवत्सेवा में प्रवृत्त होने के मार्ग का प्रशस्त पाथेय है.

८४ वैष्णवों की वार्ता अन्तर्गत तुलसा की वार्ता में स्पष्ट है कि भगवत्सेवा एवं श्रीमहाप्रभुजी के ग्रन्थों का पाठ करें तो प्रभु सानुभावता; जो सेवा का फल है, जताते हैं.

'श्रीवल्लभस्य हितं वचः (पाठावली)' नित्य नियम के पुष्टिमार्गीय पाठों को मुद्रणशुद्धि का विशेष ध्यान रखते हुए प्रकाशित करने का स्तुत्य प्रयास है. ग्रन्थ का स्वारस्य समजते हुए पाठ हो; एतदर्थ ग्रन्थ के प्रारंभ में ग्रन्थसार अत्यधिक उपयोगी है.

चि.पीयूषबावा के हृदय में बिराजकर श्रीमहाप्रभुजी; पुष्टिमार्गीय आचार्योचित कार्य करवाते रहें ऐसी आचार्यचरण के चरणारविन्द में अभ्यर्थना....

गोस्वामी श्रीकिशोरचन्द्रजी श्रीपुरुषोत्तमलालजी महाराजश्री.

।। श्रीदामोदरमदनमोहनौ प्रभू विजयेते ।।
।। श्रीवल्लभाधीशो जयति ।। ।। जयति श्रीविठ्ठलेश्वरः ।।

प्राक्कथन

श्रीतातचरणं वन्दे कृष्णसेवापरायणम् । पुष्टिदीक्षाप्रदानेन सन्मार्गदायकं गुरुम् ।।१।।
वन्दे सिद्धान्तसन्निष्ठम् आचार्यं ज्ञानरूपिणम् । पुष्टिग्रन्थावबोधेन ममान्तरप्रकाशकम् ।।२।।

भगवदाज्ञा से श्रीकृष्णास्य स्वरूप श्रीवल्लभाचार्यचरण ने पुष्टिभक्ति का सर्वोत्तम मार्ग प्रकट कर हम पर महती कृपा की है. अहन्ता ममतात्मक संसार से आनन्द स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण की ओर ले जाने वाला यह दिव्य मार्ग है.

आचार्यचरणने; सर्व शास्त्रों के निगूढ तात्पर्यरूप पुष्टिभक्तिसिद्धान्तों का विविध ग्रन्थो में निरूपण किया है. हमारे मार्ग को प्रकाशित करने वाले सूर्य समान यह ग्रन्थ दृष्टि से दूर होते ही अन्धकार में मार्ग की दिशा उलट कर श्रीकृष्णभक्ति से संसार की ओर हो सकती है. इस स्थिति के निवारणार्थ; मार्ग पर चलनेवाले प्रत्येक आचार्य एवं अनुयायी का अनिवार्य कर्तव्य है कि, इन ग्रन्थों के आधार पर ही मार्ग का स्वरूप समजे - समजावें एवं उसका अनुसरण करे.

वस्तुतः आचार्यग्रन्थ ही हमारी वैष्णवी जीवन जीने की प्रेरणा है. हम सही मार्ग पर चल रहे हैं अथवा नहीं इसका निर्णय करने का आधार भी यह आचार्यग्रन्थ ही है. हमारी भक्तिसाधना की प्रगति का मूल्यांकन भी हम आचार्यग्रन्थों के आधार पर ही कर सकते हैं. हमारे व्यक्तिगत एवं सामूहिक क्रियाकलाप; मार्ग के अनुकूल हैं या प्रतिकूल इसका निर्धारण करने का आधार भी यह ग्रन्थ ही हैं. अत: प्रत्येक पुष्टिमार्गी को नियम से आचार्यवाणी का पाठ एवं अर्थानुसन्धान अवश्य ही करना चाहिए.

विविध पुष्टिमार्गीय आचार्यगृहों के द्वारा श्रीवल्लभवचनों के प्रति निष्ठा की अभिव्यक्ति के रूप में पुन: पुन: इन ग्रन्थों का प्रकाशन होता रहे यह अभीष्ट है. हम श्रीआचार्यवाणी का प्रकाशन कर पा रहें हैं; यह हमारा सौभाग्य है. पाठ करते समय ग्रन्थ के विषय का अनुसन्धान हो; एतदर्थ ग्रन्थों के प्रारंभ में यथाबुद्धि भूमिका लिखने का प्रयास किया है.

अधिकाधिक पुष्टिमार्गी; श्रीवल्लभ के हितकारी वचनों से लाभान्वित हों इसी अभिलाषा के साथ ...

गोस्वामी पीयूष श्रीकिशोरचन्द्रजी

अनुक्रमणिका

।। मङ्गलाचरणम् ।।

मङ्गलाचरण; एककायतया रचित ग्रन्थ नहीं है. परन्तु पांच श्लोकों का सुविचारित रूप से किया गया संकलन है. इसके प्रथम दो श्लोक श्रीविठ्ठलेश प्रभुचरण द्वारा रचित है. तृतीय श्लोक गुरुवन्दना की परम्परा से प्राप्त है. चतुर्थ एवं पञ्चम श्लोक श्रीवल्लभाचार्यचरण द्वारा रचित है.

प्रथम श्लोक में श्रीवल्लभाचार्यचरण को, द्वितीय श्लोक में श्रीगोपीनाथप्रभुचरण को (अर्थत: श्रीविठ्ठलेशप्रभुचरण को भी), तृतीय श्लोक में अपने पुष्टि दीक्षा एवं ज्ञान दाता गुरुदेव को तथा चतुर्थ श्लोक में लीलाविशिष्ट भगवान् श्रीकृष्ण को नमन किया गया है. पञ्चम श्लोक में दशम स्कन्ध के पांच (= जन्म-तामस-राजस-सात्त्विक-गुण) प्रकरणों में वर्णित भगवान्; स्वहृदय में विराजमान् हों यह भावना है.

चिन्ता-सन्तान-हन्तारो यत्पादाम्बुज-रेणव: ।।
स्वीयानां तान् निजाचार्यान् प्रणमामि मुहुर्मुहु: ।।१।।
यदनुग्रहतो जन्तु: सर्वदु:खातिगो भवेत् ।।
तमहं सर्वदा वन्दे श्रीमद्वल्लभनन्दनम् ।।२।।
अज्ञान-तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन-शलाकया ।।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नम: ।।३।।
नमामि हृदये शेषे लीला-क्षीराब्धि-शायिनम् ।।
लक्ष्मी-सहस्र-लीलाभि: सेव्यमानं कलानिधिम् ।।४।।
चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च त्रिभिस्तथा ।।
षड्भिर्विराजते योऽसौ पञ्चधा हृदये मम ।।५।।

।। प्रात:स्मरणम् ।।

श्रीगोवर्धन-नाथ-पाद-युगलं हैयङ्गवीन-प्रियं
नित्यं श्रीमथुराधिपं सुखकरं श्रीविट्ठलेशं मुदा ।
श्रीमद्द्वारवतीश-गोकुलपती श्रीगोकुलेन्दुं विभुं
श्रीमन्मन्मथमोहनं नटवरं श्रीबालकृष्णं भजेत् ।।

श्रीमद्वल्लभ-विट्ठलौ गिरिधरं गोविन्दरायाभिधं
श्रीमद्बालककृष्ण-गोकुलपती नाथं रघूणांस्तथा ।
एवं श्रीयदुनायकं किल घनश्यामं च तद्वंशजान्
कालिन्दीं स्वगुरुं गिरिं गुरुविभुं स्वीयप्रभूंश्च स्मरेत् ।।

।। श्रीभगवत्स्वरूपध्यानम् ।।

बर्हापीडं नटवरवपु: कर्णयो: कर्णिकारं
बिभ्रद् वास: कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै:
वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्ति: ।।

।। श्रीवल्लभाचार्यस्वरूपध्यानम् ।।

सौन्दर्यं निजहृद्गतं प्रकटितं स्त्री-गूढ-भावात्मकं
पुंरूपं च पुनस्तदन्तरगतं प्रावीविशद् स्वप्रिये ।
संश्लिष्टावुभयोर्बभौ रसमय: कृष्णो हि यत्साक्षिकं
रूपं तत् त्रितयात्मकं परमभिध्येयं सदा वल्लभम् ।।

।। श्रीगोपीनाथप्रभुचरणध्यानम् ।।

श्रीवल्लभ-प्रतिनिधिं तेजोराशिं दयार्णवम् ।
गुणातीतं गुणनिधिं श्रीगोपीनाथमाश्रये ।।

।। श्रीविट्ठलेशप्रभुचरणध्यानम् ।।

सायं कुञ्जालयस्थासनमुपविलसत्स्वर्णपात्रं सुधौतं
राजद्-यज्ञोपवीतं परितनुवसनं गौरमम्भोजवक्त्रम् ।
प्राणानायम्य नासापुट-निहितकरं कर्ण-राजद्विमुक्तं
वन्देऽर्धोन्मीलिताक्षं मृगमदतिलकं विट्ठलेशं सुकेशम् ।।

।। श्रीसर्वोत्तमस्तोत्रम् ।।

श्रीसर्वोत्तमस्तोत्र में श्रीविठ्ठलेश प्रभुचरण ने श्रीवल्लभाचार्यजी के १०८ नाम प्रकट किये हैं. यह स्तोत्र पुष्टिसाधना का प्रथम सोपान है. गुरुकृपा बिना फल प्राप्ति संभव नहीं. समस्त पुष्टिमार्गीयों के गुरु श्रीवल्लभाचार्यजी की कृपा ही श्रीकृष्णस्वरूपात्मक फल देने में समर्थ है; हमारे साधनबल से कदापि यह फल प्राप्त नहीं हो सकता.

श्रीसर्वोत्तमस्तोत्र के पाठ से भक्तियोग में आते प्रतिबन्ध दूर होते हैं एवं भक्तिमार्गीय सर्वोत्तम फल प्राप्त होता है. अतः प्रत्येक पुष्टिमार्गीय वैष्णव को श्रीसर्वोत्तमस्तोत्र का पाठ अवश्य करना चाहिए.

प्राकृतधर्मानाश्रयम् अप्राकृत-निखिल-धर्मरूपमिति ।।
निगमप्रतिपाद्यं यत् तच्छुद्धं साकृति स्तौमि ।।१।।
कलिकाल-तमश्छन्न-दृष्टित्वाद् विदुषामपि ।।
सम्प्रत्यविषयस्तस्य माहात्म्यं समभूद् भुवि ।।२।।
दयया निजमाहात्म्यं करिष्यन् प्रकटं हरिः ।।
वाण्या यदा तदा स्वास्यं प्रादुर्भूतं चकार हि ।।३।।
तदुक्तमपि दुर्बोधं सुबोधं स्याद् यथा तथा ।।
तन्नामाष्टोत्तरशतं प्रवक्ष्याम्यखिलाघहृत् ।।४।।
ऋषिरग्निकुमारस्तु नाम्नां छन्दो जगत्यसौ ।।
श्रीकृष्णास्यं देवता च बीजं कारुणिकः प्रभुः ।।५।।
विनियोगो भक्तियोग-प्रतिबन्ध-विनाशने ।।
कृष्णाधरामृतास्वाद-सिद्धिरत्र न संशयः ।।६।।
आनन्दः परमानन्दः श्रीकृष्णास्यं कृपानिधिः ।।
दैवोद्धारप्रयत्नात्मा स्मृतिमात्रार्तिनाशनः ।।७।।
श्रीभागवत-गूढार्थ-प्रकाशन-परायणः ।।
साकार-ब्रह्म-वादैक-स्थापको वेदपारगः ।।८।।
मायावाद-निराकर्ता सर्ववादि-निरासकृत् ।।

भक्तिमार्गाब्जमार्तण्ड: स्त्रीशूद्राद्युद्धृतिक्षम: ।।९।।
अङ्गीकृत्यैव गोपीश-वल्लभी-कृत-मानव: ।।
अङ्गीकृतौ समर्यादो महाकारुणिको विभु: ।।१०।।
अदेय-दान-दक्षश्च महोदार-चरित्रवान् ।।
प्राकृतानुकृतिव्याज-मोहितासुरमानुष: ।।११।।
वैश्वानरो वल्लभाख्य: सद्रूपो हितकृत्-सताम् ।।
जनशिक्षाकृते कृष्णभक्तिकृन्निखिलेष्टद: ।।१२।।
सर्व-लक्षण-सम्पन्न: श्रीकृष्ण-ज्ञानदो गुरु: ।।
स्वानन्दतुन्दिल: पद्म-दलायत-विलोचन: ।।१३।।
कृपादृग्-वृष्टि-संहृष्ट-दास-दासी-प्रिय: पति: ।।
रोषदृक्पातसम्प्लुष्ट-भक्तद्विट् भक्तसेवित: ।।१४।।
सुखसेव्यो दुराराध्यो दुर्लभाङ्घ्रिसरोरुह: ।।
उग्रप्रतापो वाक्सीधु-पूरिताशेष-सेवक: ।।१५।।
श्रीभागवत-पीयूष-समुद्र-मथन-क्षम: ।।
तत्सार-भूत-रासस्त्री-भावपूरित-विग्रह: ।।१६।।
सान्निध्य-मात्र-दत्त-श्रीकृष्णप्रेमा विमुक्तिद: ।।
रासलीलैक-तात्पर्य: कृपयैतत्कथा-प्रद: ।।१७।।
विरहानुभवैकार्थ-सर्व-त्यागोपदेशक: ।।
भक्त्याचारोपदेष्टा च कर्म-मार्ग-प्रवर्तक: ।।१८।।
यागादौ भक्तिमार्गैक-साधनत्वोपदेशक: ।।
पूर्णानन्द: पूर्णकामो वाक्पतिर्विबुधेश्वर: ।।१९।।
कृष्ण-नाम-सहस्रस्य वक्ता भक्तपरायण: ।।
भक्त्याचारोपदेशार्थ-नानावाक्यनिरूपक: ।।२०।।
स्वार्थोज्झिताखिल-प्राण-प्रियस्तादृश-वेष्टित: ।।
स्वदासार्थ-कृताशेष-साधन: सर्वशक्तिधृक् ।।२१।।

भुवि भक्ति-प्रचारैक-कृते स्वान्वयकृत् पिता ।।
स्ववंशे स्थापिताशेषस्वमाहात्म्य: स्मयापह: ।।२२।।
पति-व्रता-पति: पार-लौकिकैहिक-दानकृत् ।।
निगूढ-हृदयोऽनन्य-भक्तेषु ज्ञापिताशय: ।।२३।।
उपासनादि-मार्गाति-मुग्ध-मोह-निवारक: ।।
भक्तिमार्गे सर्वमार्ग-वैलक्षण्यानुभूतिकृत् ।।२४।।
पृथक्-शरण-मार्गोपदेष्टा श्रीकृष्ण-हार्दवित् ।।
प्रतिक्षण-निकुञ्जस्थ-लीलारस-सुपूरित: ।।२५।।
तत्कथाक्षिप्त-चित्तस्तद्विस्मृतान्यो व्रजप्रिय:।।
प्रियव्रजस्थिति: पुष्टिलीला-कर्ता रह:प्रिय: ।।२६।।
भक्तेच्छा-पूरक: सर्वाज्ञातलीलोऽति-मोहन: ।।
सर्वासक्तो भक्तमात्रासक्त: पतित-पावन: ।।२७।।
स्वयशो-गान-संहृष्ट-हृदयाम्भोज-विष्टर: ।।
यश:-पीयूषलहरी-प्लावितान्य-रस: पर: ।।२८।।
लीलामृत-रसार्द्रार्द्री-कृताखिल-शरीर-भृत् ।।
गोवर्धनस्थित्युत्साहस्तल्लीला-प्रेम-पूरित: ।।२९।।
यज्ञ-भोक्ता यज्ञ-कर्ता चतुर्वर्ग-विशारद: ।।
सत्य-प्रतिज्ञस् त्रिगुणातीतो नयविशारद: ।।३०।।
स्व-कीर्तिवर्धनस्तत्त्वसूत्र-भाष्य-प्रदर्शक: ।।
मायावादाख्य-तूलाग्निर् ब्रह्मवादनिरूपक: ।।३१।।
अप्राकृताखिलाकल्प-भूषित: सहज-स्मित: ।।
त्रिलोकी-भूषणं भूमि-भाग्यं सहज-सुन्दर: ।।३२।।
अशेष-भक्त-सम्प्रार्थ्य-चरणाब्ज-रजो-धन: ।।
इत्यानन्दनिधे: प्रोक्तं नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ।।३३।।
श्रद्धा-विशुद्ध-बुद्धिर्य: पठत्यनुदिनं जन: ।।

स तदेकमना: सिद्धिम् उक्तां प्राप्नोत्यसंशय: ।।३४।।
तदप्राप्तौ वृथा मोक्ष: तदाप्तौ तद्गतार्थता ।।
अत: सर्वोत्तमं स्तोत्रं जप्यं कृष्णरसार्थिभि: ।।३५।।

।। इति श्रीमदग्निकुमारप्रोक्तं श्रीसर्वोत्तमस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।।

।। श्रीवल्लभाष्टकम् ।।

श्रीवल्लभाष्टकम् के आठ श्लोकों में श्रीविठ्ठलनाथप्रभुचरण ने श्रीवल्लभाचार्यजी के त्रितयात्मक सौन्दर्य का अष्टविध रूप से वर्णन किया है.

**श्रीमद्-वृन्दावनेन्दु-प्रकटित-रसिकानन्द-सन्दोहरूप-
स्फूर्जद्-रासादिलीलामृतजलधिभराक्रान्त-सर्वोऽपि शश्वत् ।।
तस्यैवात्मानुभाव-प्रकटन-हृदयस्याज्ञया प्रादुरासीद्
भूमौ य: सन्मनुष्याकृतिरति-करुणस्तं प्रपद्ये हुताशम् ।।१।।
नाविर्भूयाद् भवांश्चेदधि-धरणि-तलं भूतनाथोदितासन्-
मार्गध्वान्तान्धतुल्या निगमपथगतौ देवसर्गेऽपि जाता: ।।
घोषाधीशं तदेमे कथमपि मनुजा: प्राप्नुयुर्नैव दैवी
सृष्टिर्व्यर्था च भूयान्निज-फल-रहिता देव वैश्वानरैषा ।।२।।
नह्यन्यो वागधीशाच्छ्रुतिगणवचसां भावमाज्ञातुमीष्टे
यस्मात् साध्वी स्वभावं प्रकटयति वधूरग्रत: पत्युरेव ।।
तस्माच्छ्रीवल्लभाख्य त्वदुदितवचनादन्यथा रूपयन्ति
भ्रान्ता ये ते निसर्गत्रिदशरिपुतया केवलान्धन्तमोगा: ।।३।।
प्रादुर्भूतेन भूमौ व्रजपति-चरणाम्भोज-सेवाख्य-वर्त्म-
प्राकट्यं यत् कृतं ते तदुत निजकृते श्रीहुताशेति मन्ये ।।
यस्मादस्मिन् स्थितो यत् किमपि कथमपि क्वाप्युपाहर्तुमिच्छ-
त्यद्धा तद् गोपिकेश: स्ववदनकमले चारुहासे करोति ।।४।।
उष्णत्वैक-स्वभावोऽप्यति-शिशिरवच:पुञ्ज-पीयूषवृष्टिर्-**

आर्तेष्वत्युग्र-मोहासुर-नृषु युगपत् तापमप्यत्र कुर्वन् ।।
स्वस्मिन् कृष्णास्यतां त्वं प्रकटयसि च नो भूतदेवत्वमेतद्
यस्मादानन्ददं श्रीव्रजजननिचये नाशकं चासुराग्नेः ।।५।।
आम्नायोक्तं यदम्भो भवनमनलतस्तच्च सत्यं विभो यत्
सर्गादौ भूतरूपादभवदनलतः पुष्करं भूतरूपम् ।।
आनन्दैकस्वरूपात् त्वदधिभु यदभूत् कृष्णसेवारसाब्धिश्
चानन्दैक-स्वरूपस्तदखिलमुचितं हेतुसाम्यं हि कार्ये ।।६।।
स्वामिन् श्रीवल्लभाग्ने ! क्षणमपि भवतः सन्निधाने कृपातः
प्राणप्रेष्ठ-व्रजाधीश्वर-वदन-दिदृक्षार्ति-तापो जनेषु ।।
यत्प्रादुर्भावमाप्नोत्युचिततरमिदं यत्तु पश्चादपीत्थं
दृष्टेऽप्यस्मिन् मुखेन्दौ प्रचुरतरमुदेत्येव तच्चित्रमेतत् ।।७।।
अज्ञानाद्यन्धकार-प्रशमनपटुता-ख्यापनाय त्रिलोक्याम्
अग्नित्वं वर्णितं ते कविभिरपि सदा वस्तुतः कृष्णएव ।।
प्रादुर्भूतो भवानित्यनुभव-निगमाद्युक्त-मानैरवेत्य
त्वां श्रीश्रीवल्लभेमे निखिलबुधजनाः गोकुलेशं भजन्ते ।।८।।

।। इति श्रीमद्विट्ठलदीक्षितविरचितं श्रीवल्लभाष्टकं सम्पूर्णम् ।।

।। श्रीस्फुरत्कृष्णप्रेमामृतस्तोत्रम् ।।

श्रीविठ्ठलेशप्रभुचरण ने श्रीस्फुरत्कृष्णप्रेमामृतस्तोत्र में श्रीवल्लभाचार्यचरण के गुणों का वर्णन किया है. प्रथम श्लोक में धर्मिस्वरूप का वर्णन, तदनन्तर छह श्लोकों में श्रीवल्लभ के छह गुण-ऐश्वर्य-वीर्य-यश-श्री-ज्ञान-वैराग्य का निरूपण किया गया है.

स्फुरत्-कृष्ण-प्रेमामृत-रस-भरेणाति-भरिता
विहारान् कुर्वाणा व्रजपति-विहाराब्धिषु सदा ।।
प्रिया गोपीभर्तुः स्फुरतु सततं 'वल्लभ' इति
प्रथावत्यस्माकं हृदि सुभगमूर्तिः सकरूणा ।।१।।

श्रीभागवत-प्रतिपद-मणिवर-भावांशु-भूषिता मूर्तिः ॥
'श्रीवल्लभा'भिधा नस्तनोतु निजदासस्यसौभाग्यम् ॥२॥
मायावादतमो निरस्य मधुभित्-सेवाख्य-वर्त्माद्भुतं
श्रीमद्-गोकुलनाथ-सङ्गमसुधा-सम्प्रापकं तत्क्षणात् ॥
दुष्प्रापं प्रकटीचकार करुणा-रागाति-सम्मोहनः
स श्रीवल्लभ-भानुरुल्लसति यः श्रीवल्लवीशान्तरः ॥३॥
क्वचित् पाण्डित्यं चेन्न निगमगतिः सापि यदि न
क्रिया सा सापि स्यात् यदि न हरिमार्गे परिचयः ॥
यदि स्यात् सोपि श्रीव्रजपति-रतिर् नेति निखिलैः
गुणैरन्यः को वा विलसति विना वल्लभवरम् ॥४॥
मायावादि-करीन्द्र-दर्प-दलनेनास्येन्दु-राजोद्गत-
श्रीमद्-भागवताख्य-दुर्लभ-सुधा-वर्षेण वेदोक्तिभिः ॥
राधावल्लभ-सेवया तदुचित-प्रेम्णोपदेशैरपि
'श्रीमद्वल्लभ'नामधेय-सदृशो भावी न भूतोऽस्त्यपि ॥५॥
यदङ्घ्रि-नख-मण्डल-प्रसृत-वारि-पीयूष-युग्-
वराङ्ग-हृदयैः कलिस् तृणमिवेह तुच्छीकृतः ॥
व्रजाधिपतिरिन्दिरा-प्रभृति-मृग्य-पादाम्बुजः
क्षणेन परितोषितस्तदनुगत्वमेवास्तु मे ॥६॥
अघौघ-तमसावृतं कलि-भुजङ्गमासादितम्
जगद् विषय-सागरे पतितमस्वधर्मे रतम् ॥
यदीक्षण-सुधा-निधि-समुदितोऽनुकम्पामृताद्
अमृत्युमकरोत् क्षणादरणमस्तु मे तत्पदम् ॥७॥

॥ इति श्रीविट्ठलेश्वरविरचितं श्रीस्फुरत्कृष्णप्रेमामृतस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

॥ नामरत्नाख्यस्तोत्रम् ॥

श्रीनामरत्नाख्यस्तोत्र श्रीविठ्ठलेश प्रभुचरण के पञ्चम् पुत्र श्रीरघुनाथजी की अनुपम कृति है. इस स्तोत्र के प्रणयन का प्रसङ्ग भी बडा रोचक है.

एक समय श्रीविठ्ठलेशप्रभुचरण; श्रीठाकुरजी के शृंगार कर रहे थे, उस समय शय्यामंदिर में रखी हुई शृंगार की पेटी की आवश्यकता हुई. तब श्रीविठ्ठलेश ने अपने बालकों से संस्कृत भाषा में कहा 'मञ्जुषाम् आनय' अर्थात् पेटी लाओ. तब बालसुलभ उत्साहवशात् उस समय मात्र पांच वर्ष के श्रीरघुनाथजी दौडते हुए शय्यामंदिर में अन्य भ्राताओं से पहले पहुंच गये. पर समझ में नहीं आया की पितृचरण ने क्या लाने को कहा है ? 'यदि कुछ लेके नहीं गये तो सब बडे भाइ हँसेंगे' सोचकर छोटे से बालक रोने लगे. उस समय परम् कारुणिक तातचरण श्रीवल्लभाचार्यजी हुए एवं अपना वरद श्रीहस्त उनके मस्तक पर रखा तथा शृंगार की पेटी ले जाने की आज्ञा दी. उसी समय सहसा श्रीरघुनाथजी के मुखमें से 'श्रीनामरत्नाख्यस्तोत्र' प्रकट हुआ. प्रसन्नचित्त से शृंगार की पेटी लेकर 'यन्नामार्कोदयात् पापध्वान्तराशिः प्रशाम्यति....' बोलते हुए आप बाहर पधारे. पितृचरण एवं अन्य बालक यह देख अत्यन्त प्रसन्न हुए.

श्रीनामरत्नाख्यस्तोत्र में श्रीविठ्ठलेशप्रभुचरण (श्रीगुसांइजी) के १०८ नाम प्रकट हुए हैं. श्रीविठ्ठलनाथजी के नाम स्वरूप सूर्य के उदय से पाप रूप अन्धकार का समूह दूर हो जाता है और समस्त भक्तिमार्गीय इष्ट प्राप्ति सहज हो जाती है.

यन्नामार्कोदयात् पाप-ध्वान्त-राशिः प्रशाम्यति ।।
विकसन्ति हृदब्जानि तन्नामानि सदाश्रये ।।१।।
आनुष्टुभमिहच्छन्दः ऋषिरग्निकुमारजः ।।
सर्वशक्तिसमायुक्तो देवः श्रीवल्लभात्मजः ।।२।।
विनियोगः समस्तेष्टसिद्ध्यर्थे विनिरूपितः ।।
श्रीविठ्ठलः कृपासिन्धुर् भक्तवश्योऽतिसुन्दरः ।।३।।
कृष्णलीलारसाविष्टः श्रीमान् वल्लभ-नन्दनः ।।
दुर्दृश्यो भक्तसन्दृश्यो भक्तिगम्यो भयापहः ।।४।।
अनन्यभक्तहृदयो दीनानाथैकसंश्रयः ।।
राजीवलोचनो रासलीलारसमहोदधिः ।।५।।
धर्मसेतुर् भक्तिसेतुः सुखसेव्यो व्रजेश्वरः ।।
भक्तशोकापहः शान्तः सर्वज्ञः सर्वकामदः ।।६।।
रुक्मिणीरमणः श्रीशो भक्तरत्नपरीक्षकः ।।

भक्तरक्षैकदक्ष: श्रीकृष्णभक्तिप्रवर्तक: ।।७।।
महासुरतिरस्कर्ता सर्वशास्त्रविदग्रणी: ।।
कर्मजाड्यभिदुष्णांशु: भक्तनेत्रसुधाकर: ।।८।।
महालक्ष्मी-गर्भरत्नं कृष्ण-वर्त्म-समुद्भव: ।।
भक्त-चिन्तामणि: भक्तिकल्पद्रुम-नवांकुर: ।।९।।
श्रीगोकुल-कृतावास: कालिन्दी-पुलिन-प्रिय: ।।
गोवर्धनागमरत: प्रियवृन्दावनाचल: ।।१०।।
गोवर्धनाद्रि-मखकृन् महेन्द्र-मद-भित्-प्रिय: ।।
कृष्णलीलैक-सर्वस्व: श्रीभागवत-भाववित् ।।११।।
पितृ-प्रवर्तित-पथ-प्रचार-सुविचारक: ।।
व्रजेश्वर-प्रीति-कर्ता तन्निमन्त्रण-भोजक: ।।१२।।
बाल-लीलादि-सुप्रीतो गोपी-सम्बन्धि-सत्कथ: ।।
अति-गम्भीर-तात्पर्य: कथनीय-गुणाकर: ।।१३।।
पितृ-वंशोदधि-विधु: स्वानुरूप-सुतप्रसू: ।।
दिक्चक्रवर्तिसत्कीर्तिर् महोज्ज्वलचरित्रवान् ।।१४।।
अनेक-क्षितिप-श्रेणी-मूर्धासक्त-पदाम्बुज: ।।
विप्र-दारिद्र्य-दावाग्नि: भूदेवाग्निप्रपूजक: ।।१५।।
गो-ब्राह्मण-प्राण-रक्षा-पर: सत्य-परायण: ।।
प्रिय-श्रुति-पथ: शश्वन् महा-मखकर: प्रभु: ।।१६।।
कृष्णानुग्रह-संलभ्यो महा-पतित-पावन: ।।
अनेकमार्गसंक्लिष्ट-जीवस्वास्थ्यप्रदो महान् ।।१७।।
नाना-भ्रम-निराकर्ता भक्ताज्ञानभिदुत्तम: ।।
महा-पुरुष-सत्ख्यातिर् महा-पुरुष-विग्रह: ।।१८।।
दर्शनीयतमो वाग्मी मायावाद-निरास-कृत् ।।
सदा प्रसन्न-वदनो मुग्ध-स्मित-मुखाम्बुज: ।।१९।।

प्रेमार्द्रदृग्-विशालाक्षः क्षितिमण्डलमण्डनः ।।
त्रिजगद्व्यापिसत्कीर्ति-धवलीकृत-मेचकः ।।२०।।
वाक्सुधाकृष्ट-भक्तान्तःकरणः शत्रु-तापनः ।।
भक्त-संप्रार्थित-करो दासदासीप्सितप्रदः ।।२१।।
अचिन्त्य-महिमा-मेयो विस्मयास्पद-विग्रहः ।।
भक्त-क्लेशासहः सर्वसहो भक्तकृते वशः ।।२२।।
आचार्य-रत्नं सर्वानुग्रहकृन्-मन्त्रवित्तमः ।।
सर्वस्वदानकुशलो गीतसंगीतसागरः ।।२३।।
गोवर्धनाचलसखो गोपगोगोपिकाप्रियः ।।
चिन्तितज्ञो महाबुद्धिर् जगद्-वन्द्यपदाम्बुजः ।।२४।।
जगदाश्चर्यरसकृत् सदा कृष्ण-कथा-प्रियः ।।
सुखोदर्ककृतिः सर्वसन्देह-च्छेददक्षिणः ।।२५।।
स्वपक्षरक्षणे दक्षः प्रतिपक्ष-क्षयंकरः ।।
गोपिका-विरहाविष्टः कृष्णात्मा स्वसमर्पकः ।।२६।।
निवेदिभक्तसर्वस्वं शरणाध्वप्रदर्शकः ।।
श्रीकृष्णानुगृहीतैक-प्रार्थनीयपदाम्बुजः ।।२७।।
इमानि नामरत्नानि श्रीविट्ठल-पदाम्बुजम् ।।
ध्यात्वा तदेकशरणो यः पठेत् स हरिं लभेत् ।।२८।।
यद्-यन् मनस्यभिध्यायेत् तत्तदाप्नोत्यसंशयम् ।।
नामरत्नाभिधमिदं स्तोत्रं यः प्रपठेत् सुधीः ।।२९।।
त्वदीयं तं गृहाणाशु प्रार्थ्यमेतन् मम प्रभो ।।
श्रीविट्ठल-पदाम्भोज-मकरन्द-जुषोऽनिशम् ।।
इयं श्रीरघुनाथस्य कृतिर्विजयतेतराम् ।।३०।।

।। इति श्रीरघुनाथविरचितं नामरत्नाख्यस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।।

।। अथ षोडशग्रन्थाः।।

।। श्रीयमुनाष्टकम् ।।

श्रीवल्लभाचार्यचरण अपनी व्रजयात्राके समय महावनके निकट श्रीयमुनाजी के तट पर श्रीमद्गोकुलगाम की शोध में परिभ्रमण कर रहे थे, तब श्रीयमुनाजी ने साक्षात् प्रकट होकर श्रीमद्गोकुल का स्थान दर्शाया. उस समय की प्रसन्नता में श्रीवल्लभाचार्यचरण के श्रीमुख से श्रीयमुनाष्टकस्तोत्रम् निःसृत हुआ.

श्रीयमुनाजी की स्तुति तो सभी करते हैं, परन्तु प्रभु की विविध लीलाओं मे उपयोगी श्रीयमुनाजी का पुष्टिमार्गीय माहात्म्य तो श्रीवल्लभ के अतिरिक्त कौन प्रकट कर सकता है? इसलिए श्रीयमुनाष्टकस्तोत्र अतिविलक्षण है. श्रीयमुनाष्टक में नौ श्लोक हैं. आठ श्लोकों में श्रीयमुनाजी के आठ ऐश्वर्यों का निरूपण हुआ है एवं नौवें श्लोक में श्रीयमुनाष्टक पाठ का फल निरूपित किया गया है.

श्रीयमुनाजी की कृपा से हमें भी यथाधिकार भक्तिमार्गीय फल प्राप्त हों एवं हमारी भगवद्भक्ति दृढ हो इस भावना के साथ श्रीयमुनाष्टकस्तोत्र का पाठ करना चाहिए.

नमामि यमुनामहं सकलसिद्धिहेतुं मुदा
मुरारि-पद-पंकज-स्फुरदमन्द-रेणूत्कटाम् ।।
तटस्थ-नवकानन-प्रकट-मोद-पुष्पाम्बुना
सुरासुर-सुपूजित-स्मरपितुः श्रियं बिभ्रतीम् ।।१।।
कलिन्द-गिरि-मस्तके पतदमन्द-पूरोज्ज्वला
विलास-गमनोल्लसत्-प्रकट-गण्ड-शैलोन्नता ।।
सघोष-गति-दन्तुरा समधिरूढ-दोलोत्तमा
मुकुन्द-रति-वर्धिनी जयति पद्मबन्धोः सुता ।।२।।
भुवं भुवन-पावनीमधिगतामनेक-स्वनैः
प्रियाभिरिव सेवितां शुकमयूरहंसादिभिः ।।
तरङ्ग-भुज-कंकण-प्रकट-मुक्तिका-वालुका-
नितम्ब-तट-सुन्दरीं नमत कृष्ण-तुर्य-प्रियाम् ।।३।।

अनन्त-गुण-भूषिते शिव-विरञ्चि-देव-स्तुते
घनाघन-निभे सदा ध्रुवपराशराभीष्टदे ।।
विशुद्ध-मथुरा-तटे सकल-गोप-गोपी-वृते
कृपा-जलधि-संश्रिते मम मन: सुखं भावय ।।४।।
यया चरणपद्मजा मुररिपो: प्रियम्भावुका
समागमनतोऽभवत् सकल-सिद्धिदा सेवताम् ।।
तया सदृशतामियात् कमलजा सपत्नीव यद्
हरिप्रिय-कलिन्दया मनसि मे सदा स्थीयताम् ।।५।।
नमोऽस्तु यमुने सदा तव चरित्रमत्यद्भुतं
न जातु यम-यातना भवति ते पय:पानत: ।।
यमोऽपि भगिनी-सुतान् कथमु हन्ति दुष्टानपि
प्रियो भवति सेवनात् तव हरेर्यथा गोपिका: ।।६।।
ममास्तु तव सन्निधौ तनु-नवत्वमेतावता
न दुर्लभतमा रतिर्मुररिपौ मुकुन्दप्रिये ।।
अतोऽस्तु तव लालना सुर-धुनी परं सङ्गमात्
तवैव भुवि कीर्तिता नतु कदापि पुष्टिस्थितै: ।।७।।
स्तुतिं तव करोति क: कमलजा-सपत्नि! प्रिये!
हरेर्यदनुसेवया भवति सौख्यमामोक्षत: ।।
इयं तव कथाधिका सकल-गोपिका-सङ्गम-
स्मरश्रम-जलाणुभि: सकल-गात्रजै: सङ्गम: ।।८।।
तवाष्टकमिदं मुदा पठति सूरसूते! सदा
समस्त-दुरित-क्षयो भवति वै मुकुन्दे रति: ।।
तया सकल-सिद्धयो मुररिपुश्च सन्तुष्यति
स्वभाव-विजयो भवेद् वदति वल्लभ: श्रीहरे: ।।९।।

।। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितं श्रीयमुनाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।।

।। बालबोधः ।।

बालबोध ग्रन्थ; श्रीआचार्यचरण ने अम्बालाके नारायणदास कायस्थ को पढाया था. सेवक बनने के पश्चात् कुछ समय; नारायणदास यात्रा में श्रीमहाप्रभुजी के साथ रहे. जब श्रीवल्लभ ने उन्हें घर वापस जाने की आज्ञा दी; तब नारायणदास ने विनती करी 'महाराज ! ऐसी कृपा करो जो संसार को सुख दु:ख कछुं मोको बाधा न करे अरु चित्त श्रीठाकुरजी के चरणारविन्द में लग्यो रहे.' उस समय श्रीमहाप्रभुजी ने नारायणदास को अपना चरणामृत दिया और बालबोध ग्रन्थ का अध्ययन कराया.

श्रीआचार्यचरण; बालबोध के प्रारंभ में श्रीहरि (दु:खहर्ता) एवं सदानन्द (आनन्दस्वरूप) भगवान् श्रीकृष्णको नमन करते है. इस मंगलाचरण से ही आचार्यचरण ने मूलभूत पुरूषार्थ स्वरूप तो भगवान् ही है यह स्पष्ट कर दिया है. परन्तु अन्यान्य सिद्धान्तों से भ्रमित होकर बालकसदृश प्रारंभिक भक्तिमार्गीय साधक अन्य किसी पुरूषार्थ को भक्ति से भी अधिक महत्त्वपूर्ण समझने न लग जाए; एतदर्थ पुरूषार्थ विषयक सर्वसिद्धान्तों का संग्रह इस ग्रन्थ में किया है.

जिस प्रकार नारायणदास की चित्तवृत्ति; श्रीवल्लभाचार्यचरण के प्रति शरणागति भाव एवं बालबोध के अभ्यास से भगवन्निष्ठ हो गई, उसी प्रकार से हम भी अन्य साधनों एवं फलों के प्रति उदासीन होकर भगवद्भक्त्यैकनिष्ठ बनें इसी भाव से बालबोध का पाठ करें.

नत्वा हरिं सदानन्दं सर्वसिद्धान्तसंग्रहम् ।।
बालप्रबोधनार्थाय वदामि सुविनिश्चितम् ।।१।।
धर्मार्थकाममोक्षाख्याश्चत्वारोऽर्था मनीषिणाम् ।।
जीवेश्वर-विचारेण द्विधा ते हि विचारिता: ।।२।।
अलौकिकास्तु वेदोक्ता: साध्यसाधनसंयुता: ।।
लौकिका ऋषिभि: प्रोक्तास्तथैवेश्वर-शिक्षया ।।३।।
लौकिकांस्तु प्रवक्ष्यामि वेदादाद्या यत: स्थिता: ।।
धर्मशास्त्राणि नीतिश्च कामशास्त्राणि च क्रमात् ।।४।।
त्रिवर्ग-साधकानीति न तन्निर्णय उच्यते ।।
मोक्षे चत्वारि शास्त्राणि लौकिके परत: स्वत: ।।५।।

द्विधा द्वे द्वे स्वतस्तत्र सांख्य-योगौ प्रकीर्तितौ ।।
त्यागात्याग-विभागेन सांख्ये त्यागः प्रकीर्तितः ।।६।।
अहन्ता-ममता-नाशे सर्वथा निरहंकृतौ ।।
स्वरूपस्थो यदा जीवः कृतार्थः स निगद्यते ।।७।।
तदर्थं प्रक्रिया काचित् पुराणेऽपि निरूपिता ।।
ऋषिभिर्बहुधा प्रोक्ता फलमेकमबाह्यतः ।।८।।
अत्यागे योगमार्गो हि त्यागोऽपि मनसैव हि ।।
यमादयस्तु कर्तव्याः सिद्धे योगे कृतार्थता ।।९।।
पराश्रयेण मोक्षस्तु द्विधा सोऽपि निरूप्यते ।।
ब्रह्मा ब्राह्मणतां यातस्तद्रूपेण सुसेव्यते ।।१०।।
ते सर्वार्था न चाद्येन शास्त्रं किञ्चिदुदीरितम् ।।
अतः शिवश्च विष्णुश्च जगतो हितकारकौ ।।११।।
वस्तुनः स्थितिसंहारौ कार्यौ शास्त्रप्रवर्तकौ ।।
ब्रह्मैव तादृशं यस्मात् सर्वात्मकतयोदितौ ।।१२।।
निर्दोष-पूर्ण-गुणता तत्तच्छास्त्रे तयोः कृता ।।
भोगमोक्षफले दातुं शक्तौ द्वावपि यद्यपि ।।१३।।
भोगः शिवेन मोक्षस्तु विष्णुनेति विनिश्चयः ।।
लोकेऽपि यत् प्रभुर्भुङ्क्ते तन्न यच्छति कर्हिचित् ।।१४।।
अतिप्रियाय तदपि दीयते क्वचिदेव हि ।।
नियतार्थ-प्रदानेन तदीयत्वं तदाश्रयः ।।१५।।
प्रत्येकं साधनं चैतत् द्वितीयार्थे महान् श्रमः ।।
जीवाः स्वभावतो दुष्टा दोषाभावाय सर्वदा ।।१६।।
श्रवणादि ततः प्रेम्णा सर्वं कार्यं हि सिध्यति ।।
मोक्षस्तु सुलभो विष्णोर् भोगश्च शिवतस्तथा ।।१७।।
समर्पणेनात्मनो हि तदीयत्वं भवेद् ध्रुवम् ।।

अतदीयतया चापि केवलश्चेत् समाश्रितः ।।१८।।
तदाश्रय-तदीयत्व-बुद्ध्यै किञ्चित् समाचरेत् ।।
स्वधर्ममनुतिष्ठन् वै भारद्वैगुण्यमन्यथा ।।
इत्येवं कथितं सर्वं नैतज्ज्ञाने भ्रमः पुनः ।।१९।।

।। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितो बालबोधः सम्पूर्णः ।।

।। सिद्धान्तमुक्तावली ।।

श्रीआचार्यचरण ने सिद्धान्तमुक्तावली ग्रन्थ की रचना अच्युतदास सनोढिया के लिए की है. अच्युतदास ने श्रीआचार्यचरण से निवेदन किया, 'महाराज ! मोपर ऐसी कृपा करो जो एकान्त में बैठि के मानसी सेवा में मन लागे.' तब श्रीआचार्यजी ने उन्हे चरणामृत दिया एवं सिद्धान्तमुक्तावली ग्रन्थ की रचना करके उन्हे अध्ययन कराया. फलस्वरूप अच्युतदास को मानसी सिद्ध हुई.

हम स्वगृहमें स्वसेव्य के प्रति अनुरागपूर्ण होकर स्वतनु तथा वित्तका स्वसेव्यमें विनियोग करें जिससे हमारा मन सेव्यस्वरूप में स्थिर हो - इस पुष्टिसिद्धान्तानुकूल भावनाके साथ सिद्धान्तमुक्तावली का पाठ करें.

नत्वा हरिं प्रवक्ष्यामि स्वसिद्धान्तविनिश्चयम् ।।
कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता ।।१।।
चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा ।।
ततः संसार-दुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्म-बोधनम् ।।२।।
परं ब्रह्मतु कृष्णो हि सच्चिदानन्दकं बृहत् ।।
द्विरूपं तद्धि सर्वं स्याद् एकं तस्माद् विलक्षणम् ।।३।।
अपरं तत्र पूर्वस्मिन् वादिनो बहुधा जगुः ।।
मायिकं सगुणं कार्यं स्वतन्त्रं चेति नैकधा ।।४।।
तदेवैतत्-प्रकारेण भवतीति श्रुतेर्मतम् ।।
द्विरूपं चापि गङ्गावज्ज्ञेयं सा जलरूपिणी ।।५।।
माहात्म्यसंयुता नृणां सेवतां भुक्तिमुक्तिदा ।।

मर्यादामार्ग-विधिना तथा ब्रह्मापि बुध्यताम् ।।६।।
तत्रैव देवता-मूर्तिः भक्त्या या दृश्यते क्वचित् ।।
गङ्गायां च विशेषेण प्रवाहाभेदबुद्धये ।।७।।
प्रत्यक्षा सा न सर्वेषां प्राकाम्यं स्यात् तया जले ।।
विहिताच्च फलात् तद्धि प्रतीत्यापि विशिष्यते ।।८।।
यथा जलं तथा सर्वं यथा शक्ता तथा बृहत् ।।
यथा देवी तथा कृष्णः तत्राप्येतदिहोच्यते ।।९।।
जगत्तु त्रिविधं प्रोक्तं ब्रह्म-विष्णु-शिवास्ततः ।।
देवता-रूप-वत् प्रोक्ता ब्रह्मणीत्थं हरिर्मतः ।।१०।।
कामचारस्तु लोकेऽस्मिन् ब्रह्मादिभ्यो न चान्यथा ।।
परमानन्द-रूपेतु कृष्णे स्वात्मनि निश्चयः ।।११।।
अतस्तु ब्रह्मवादेन कृष्णे बुद्धिर्विधीयताम् ।।
आत्मनि ब्रह्मरूपेतु छिद्रा व्योम्नीव चेतनाः ।।१२।।
उपाधिनाशे विज्ञाने ब्रह्मात्मत्वावबोधने ।।
गङ्गातीर-स्थितो यद्वद् देवतां तत्र पश्यति ।।१३।।
तथा कृष्णं परं ब्रह्म स्वस्मिन् ज्ञानी प्रपश्यति ।।
संसारी यस्तु भजते स दूरस्थो यथा तथा ।।१४।।
अपेक्षित-जलादीनाम् अभावात् तत्र दुःखभाक् ।।
तस्माच्छ्रीकृष्णमार्गस्थो विमुक्तः सर्वलोकतः ।।१५।।
आत्मानन्द-समुद्रस्थं कृष्णमेव विचिन्तयेत् ।।
लोकार्थी चेद् भजेत् कृष्णं क्लिष्टो भवति सर्वथा ।।१६।।
क्लिष्टोऽपि चेद् भजेत् कृष्णं लोको नश्यति सर्वथा ।।
ज्ञानाभावे पुष्टिमार्गी तिष्ठेत् पूजोत्सवादिषु ।।१७।।
मर्यादास्थस्तु गङ्गायां श्रीभागवत-तत्परः ।।
अनुग्रहः पुष्टिमार्गे नियामक इति स्थितिः ।।१८।।

उभयोस्तु क्रमेणैव पूर्वोक्तैव फलिष्यति ।।
ज्ञानाधिको भक्तिमार्गः एवं तस्मान्निरूपितः ।।१९।।
भक्त्यभावेतु तीरस्थो यथा दुष्टैः स्वकर्मभिः ।।
अन्यथाभावमापन्नः तस्मात् स्थानाच्च नश्यति ।।२०।।
एवं स्वशास्त्र-सर्वस्वं मया गुप्तं निरूपितम् ।।
एतद् बुद्ध्वा विमुच्येत पुरुषः सर्व-संशयात् ।।२१।।

।। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचिता सिद्धान्तमुक्तावली सम्पूर्णा ।।

।। पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदः ।।

एक अद्वितीय ब्रह्म ही स्वरमणार्थ निर्मित इस सृष्टि में विभिन्न रूपों मे प्रकट होता है. वैविध्य के बिना रमण सम्भव नहीं. जैसे ब्रह्मोपादानक जड सृष्टि में विविधता है ऐसे ही ब्रह्म के अंश रूप जीव में भी भगवदिच्छा से स्वभावभिन्नता प्रकट हुई है.

श्रीवल्लभाचार्यचरण; पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद ग्रन्थ में निरूपित करते हैं कि- प्रभु ने तीन प्रकार के मार्ग प्रकट किये हैं पुष्टि - प्रवाह एवं मर्यादा. इन तीन मार्गों पर चलने वाले जीव, उनके देह एवं क्रियाएँ भिन्न भिन्न है तथा इन मार्गों के फल भी भिन्न हैं. यद्यपि यह ग्रन्थ पूर्ण प्राप्त नहीं हो पाया है. तथापि जितना उपलब्ध है उतने निरूपण से भी पुष्टिमार्ग, पुष्टिजीव-देह-क्रिया तथा पुष्टिफल की विलक्षणता तो स्पष्ट हो ही जाती है. अतः यह ग्रन्थ; दर्पण की तरह हमारा, स्वयं से परिचय कराता है.

पुष्टि-प्रवाह-मर्यादा विशेषेण पृथक् पृथक् ।।
जीव-देह-क्रिया-भेदैः प्रवाहेण फलेन च ।।१।।
वक्ष्यामि सर्वसन्देहा न भविष्यन्ति यच्छ्रुतेः ।।
भक्तिमार्गस्य कथनात् पुष्टिरस्तीति निश्चयः ।।२।।
'द्वौ भूतसर्गावि'त्युक्तेः प्रवाहोऽपि व्यवस्थितः ।।
वेदस्य विद्यमानत्वात् मर्यादापि व्यवस्थिता ।।३।।
कश्चिदेव हि भक्तो हि 'यो मद्भक्त' इतीरणात् ।।
सर्वत्रोत्कर्षकथनात् पुष्टिरस्तीति निश्चयः ।।४।।

न सर्वोऽत: प्रवाहाद्धि भिन्नो वेदाच्च भेदत: ।।
‘यदा यस्ये’ति वचनात् ‘नाहं वेदै’रितीरणात् ।।५।।
मार्गैकत्वेऽपि चेदन्त्यौ तनू भक्त्यागमौ मतौ ।।
न तद् युक्तं सूत्रतोहि भिन्नो युक्त्या हि वैदिक: ।।६।।
जीव-देह-कृतीनां च भिन्नत्वं नित्यताश्रुते: ।।
यथा तद्वत् पुष्टिमार्गे द्वयोरपि निषेधत: ।।७।।
प्रमाणभेदाद् भिन्नोहि पुष्टिमार्गो निरूपित: ।।
सर्गभेदं प्रवक्ष्यामि स्वरूपाऽङ्गक्रियायुतम् ।।८।।
इच्छामात्रेण मनसा प्रवाहं सृष्टवान् हरि: ।।
वचसा वेदमार्गंहि पुष्टिं कायेन निश्चय: ।।९।।
मूलेच्छात: फलं लोके वेदोक्तं वैदिकेऽपि च ।।
कायेन तु फलं पुष्टौ भिन्नेच्छातोऽपि नैकधा ।।१०।।
‘तानहं द्विषतो’ वाक्याद् भिन्ना जीवा: प्रवाहिण: ।।
अत एवेतरौ भिन्नौ सान्तौ मोक्षप्रवेशत: ।।११।।
तस्माज्जीवा: पुष्टिमार्गे भिन्नाएव न संशय: ।।
भगवद्-रूप-सेवार्थं तत्सृष्टिर्नान्यथा भवेत् ।।१२।।
स्वरूपेणावतारेण लिङ्गेन च गुणेन च ।।
तारतम्यं न स्वरूपे देहे वा तत्क्रियासु वा ।।१३।।
तथापि यावता कार्यं तावत् तस्य करोति हि ।।
तेहि द्विधा शुद्ध-मिश्र-भेदान् मिश्रास्त्रिधा पुन: ।।१४।।
प्रवाहादि-विभेदेन भगवत्कार्य-सिद्धये ।।
पुष्ट्या विमिश्रा: सर्वज्ञा: प्रवाहेण क्रियारता: ।।१५।।
मर्यादया गुणज्ञास्ते शुद्धा: प्रेम्णातिदुर्लभा: ।।
एवं सर्गस्तु तेषां हि फलं त्वत्र निरूप्यते ।।१६।।
भगवानेव हि फलं स यथाविर्भवेद् भुवि ।।
गुणस्वरूपभेदेन तथा तेषां फलं भवेत् ।।१७।।

आसक्तौ भगवानेव शापं दापयति क्वचित् ।।
अहंकारेऽथवा लोके तन्मार्ग-स्थापनाय हि ।।१८।।
न ते पाषण्डतां यान्ति न च रोगाद्युपद्रवाः ।।
महानुभावाः प्रायेण शास्त्रं शुद्धत्व-हेतवे ।।१९।।
भगवत्-तारतम्येन तारतम्यं भजन्ति हि ।।
लौकिकत्वं वैदिकत्वं कापट्यात् तेषु नान्यथा ।।२०।।
वैष्णवत्वं हि सहजं ततोऽन्यत्र विपर्ययः ।।
सम्बन्धिनस्तु ये जीवाः प्रवाहस्थास्तथाऽपरे ।।२१।।
चर्षणी शब्द वाच्यास्ते ते सर्वे सर्ववर्त्मसु ।।
क्षणात् सर्वत्वमायान्ति रुचिस्तेषां न कुत्रचित् ।।२२।।
तेषां क्रियानुसारेण सर्वत्र सकलं फलम् ।।
प्रवाहस्थान् प्रवक्ष्यामि स्वरूपाऽङ्गक्रियायुतान् ।।२३।।
जीवास्ते ह्यासुराः सर्वे 'प्रवृत्तिञ्चे'ति वर्णिताः ।।
तेच द्विधा प्रकीर्त्यन्ते ह्यज्ञ-दुर्ज्ञ-विभेदतः ।।२४।।
दुर्ज्ञास्ते भगवत्प्रोक्ता ह्यज्ञास्ताननु ये पुनः ।।
प्रवाहेऽपि समागत्य पुष्टिस्थस्तैर्न युज्यते ।।२५।।
सोऽपि तैस्तत्कुले जातः कर्मणा जायते यतः ।।

।। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितः पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदः सम्पूर्णः ।।

।। सिद्धान्तरहस्यम् ।।

एक समय श्रावण शुक्ल एकादशी की रात्रि को श्रीमहाप्रभुजी; श्रीमद्गोकुल में श्रीयमुनाजी के गोविन्दघाट पर बिराज रहे थे. उस समय आपश्रीको यह चिन्ता हुइ कि - 'श्रीठाकुरजी ने आज्ञा दीनी है जो - जीवनको ब्रह्मसम्बन्ध करवाओ' परन्तु 'जीव तो दोष सहित है, और श्रीपूर्णपुरुषोत्तम तो गुणनिधान है, ऐसे सम्बन्ध कैसे होय ?' तब भगवान् श्रीकृष्ण ने साक्षात् प्रकट होकर श्रीआचार्यचरण को ब्रह्मसम्बन्धमन्त्र प्रदान किया. उस समय की भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा का अक्षरशः निरूपण; श्रीआचार्यचरण ने सिद्धान्तरहस्य ग्रन्थ में किया है.

भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा करने के लिए पुष्टिसृष्टि का प्राकट्य है. आवश्यक शुद्धि के बिना भगवत्सेवा संभव नहीं. इसलिए भगवत्सेवा करने योग्य देह-जीव की शुद्धि के लिए ब्रह्मसम्बन्ध की आज्ञा प्रभु ने प्रदान करी है.

ब्रह्मसम्बन्ध प्राप्त होने पर सहज-देशोत्थ-कालोत्थ-संयोगज-स्पर्शज यह पंचविध दोष भगवत्सेवा में बाधा नहीं करते. जीव के उद्धार के प्रति निरन्तर चिन्तनशील ऐसे हमारे आचार्यवर्य की महोदारता का स्मरण करके सिद्धान्तरहस्य का पाठ करना चाहिए.

श्रावणस्यामले पक्षे एकादश्यां महानिशि ।।
साक्षाद् भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते ।।१।।
ब्रह्म-सम्बन्ध-करणात् सर्वेषां देह-जीवयो: ।।
सर्व-दोष-निवृत्तिर्हि दोषा: पञ्चविधा: स्मृता: ।।२।।
सहजा देशकालोत्था: लोकवेदनिरूपिता: ।।
संयोगजा: स्पर्शजाश्च न मन्तव्या: कथञ्चन ।।३।।
अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्ति: कथञ्चन ।।
असमर्पित-वस्तूनां तस्माद् वर्जनमाचरेत् ।।४।।
निवेदिभि: समर्प्यैव सर्वं कुर्यादिति स्थिति: ।।
न मतं देवदेवस्य सामिभुक्त-समर्पणम् ।।५।।
तस्मादादौ सर्वकार्ये सर्ववस्तु-समर्पणम् ।।
दत्तापहारवचनं तथा च सकलं हरे: ।।६।।
न ग्राह्यमिति वाक्यं हि भिन्नमार्गपरं मतम् ।।
सेवकानां यथा लोके व्यवहार: प्रसिध्यति ।।७।।
तथा कार्यं समर्प्यैव सर्वेषां ब्रह्मता तत: ।।
गङ्गात्वं सर्वदोषाणां गुणदोषादिवर्णना ।।८।।
गङ्गात्वे न निरूप्या स्यात् तद्वदत्रापि चैव हि ।।

।। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितं सिद्धान्तरहस्यं सम्पूर्णम् ।।

।। नवरत्नम् ।।

नवरत्न ग्रन्थ की रचना श्रीमहाप्रभुजी ने विक्रम संवत् १५५८ में अडैल में की थी. यह ग्रन्थ खेरालुके गोविन्द दूबे के लिए लिखा गया था. श्रीवल्लभ की आज्ञा से गोविन्द दूबे श्रीठाकुरजी की सेवा करने लगे. पर मन में व्यग्रता रहती थी और चित्त सेवा में नहीं लगता था. तब श्रीमहाप्रभुजी ने नवरत्न ग्रन्थ की रचना करके उन्हें प्रदान किया एवं आज्ञा करी कि 'यह नवरत्न ग्रन्थको पाठ किये से तेरे मन की विग्रहता मिटि जायेगी.' तब पाठ करनेसे गोविन्द दूबे की व्यग्रता दूर हुई एवं चित्त प्रभु में स्थिर हुआ.

नवरत्न ग्रन्थ में श्रीमहाप्रभुजी ने भगवत्सेवा - समर्पण आदि विषयक भक्तिमार्गीय चिन्ताओं की निवृत्ति का उपाय बताया है. लौकिक चिन्ताओं की निवृत्ति के लिए नवरत्न के पाठ का कोई औचित्य नहीं है. अत: हमें भी हमारी श्रीकृष्णप्रभु में भक्ति बढाने हेतु ही नवरत्न ग्रन्थ का पाठ एवं अर्थानुसन्धान करना चाहिए.

चिन्ता कापि न कार्या निवेदितात्मभि: कदापीति ।।
भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीञ्च गतिम् ।।१।।
निवेदनन्तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनै: ।।
सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा निजेच्छात: करिष्यति ।।२।।
सर्वेषां प्रभुसम्बन्धो न प्रत्येकमिति स्थिति: ।।
अतोऽन्यविनियोगेऽपि चिन्ता का स्वस्य सोऽपि चेत् ।।३।।
अज्ञानादथवा ज्ञानात् कृतमात्मनिवेदनम् ।।
यै: कृष्णसात्कृतप्राणै: तेषां का परिदेवना ।।४।।
तथा निवेदने चिन्ता त्याज्या श्रीपुरुषोत्तमे ।।
विनियोगेऽपि सा त्याज्या समर्थोहि हरि: स्वत: ।।५।।
लोके स्वास्थ्यं तथा वेदे हरिस्तु न करिष्यति ।।
पुष्टिमार्गस्थितो यस्मात् साक्षिणो भवताखिला: ।।६।।
सेवाकृतिर्गुरोराज्ञा बाधनं वा हरीच्छया ।।
अत: सेवापरं चित्तं विधाय स्थीयतां सुखम् ।।७।।
चित्तोद्वेगं विधायापि हरिर्यद्यत् करिष्यति ।।

तथैव तस्य लीलेति मत्वा चिन्तां द्रुतं त्यजेत् ।।८।।
तस्मात् सर्वात्मना नित्यं 'श्रीकृष्ण: शरणं मम'।।
वदद्भिरेवं सततं स्थेयमित्येव मे मति: ।।९।।

।। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितं नवरत्नं सम्पूर्णम् ।।

।। अन्त:करणप्रबोध: ।।

श्रीवल्लभाचार्यचरण ने निजधाम पधारने की तृतीय भगवदाज्ञा के पश्चात् एवं संन्यासग्रहण से पूर्वके किसी समय में स्वयं अपने अन्त:करण को प्रबोधन करने के रुपमें अन्त:करणप्रबोध ग्रन्थ की रचना की है. श्रीवल्लभ ने अपने अन्त:करण को निमित्त बनाकर प्रत्येक पुष्टिमार्गीय वैष्णव को यह बोध दिया है कि 'कृष्ण से अधिक कोइ देव नहीं है, हमारे देह आदि की सार्थकता कृष्णभक्ति में ही है, भगवदिच्छा को सर्वोपरि मानकर दासत्व की भावना से युक्त जीवन ही प्रभुकी प्रसन्नताका हेतु है...' अन्त:करण की शिथिलता को दूर करनेवाला यह महान् उपदेश श्रीकृष्णभक्त की भगवत्स्वरूपनिष्ठा को सुदृढ बनाता है.

हमारा भगवद्दासत्व का भाव दृढ हो एवं हमारी अहंता ममता श्रीवल्लभोपदिष्ट भाव से भावित होकर श्रीकृष्णाभिमुख हो एतदर्थ अन्त:करणप्रबोध का पाठ एवं अर्थानुसन्धान करना चाहिए.

अन्त:करण मद्वाक्यं सावधानतया शृणु ।।
कृष्णात् परं नास्ति दैवं वस्तुतो दोषवर्जितम् ।।१।।
चाण्डाली चेद् राजपत्नी जाता राज्ञा च मानिता ।।
कदाचिदपमानेऽपि मूलत: का क्षतिर्भवेत् ।।२।।
समर्पणादहं पूर्वम् उत्तम: किं सदा स्थित: ।।
का ममाधमता भाव्या पश्चात्तापो यतो भवेत् ।।३।।
सत्यसंकल्पतो विष्णु: नान्यथातु करिष्यति ।।
आज्ञैव कार्या सततं स्वामिद्रोहोऽन्यथा भवेत् ।।४।।
सेवकस्यतु धर्मोऽयं स्वामी स्वस्य करिष्यति ।।

आज्ञा पूर्वन्तु या जाता गङ्गासागरसङ्गमे ।।५।।
यापि पश्चान्मधुवने न कृतं तद्द्वयं मया ।।
देहदेशपरित्यागः तृतीयो लोकगोचरः ।।६।।
पश्चात्तापः कथं तत्र सेवकोऽहं न चान्यथा ।।
लौकिकप्रभुवत् कृष्णो न द्रष्टव्यः कदाचन ।।७।।
सर्वं समर्पितं भक्त्या कृतार्थोऽसि सुखी भव ।।
प्रौढापि दुहिता यद्वत् स्नेहान्न प्रेष्यते वरे ।।८।।
तथा देहे न कर्तव्यं वरस्तुष्यति नान्यथा ।।
लोकवच्चेत् स्थितिर्मे स्यात् किं स्यादिति विचारय ।।९।।
अशक्ये हरिरेवास्ति मोहं मा गाः कथञ्चन ।।
इति श्रीकृष्णदासस्य वल्लभस्य हितं वचः ।।१०।।
चित्तं प्रति यदाकर्ण्य भक्तो निश्चिन्ततां व्रजेत् ।।

।। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितो अन्तःकरणप्रबोधः सम्पूर्णः ।।

।। विवेकधैर्याश्रयः ।।

विवेकधैर्याश्रय ग्रन्थ में श्रीवल्लभाचार्यचरण ने; 'विवेक' 'धैर्य' एवं 'आश्रय'का सुबोध निरूपण किया है. जीवमें भगवान् के प्रति अनन्य आश्रयभाव का होना ही उसकी भक्ति की आधारशिला होती है. श्रीवल्लभ; आश्रयका अर्थ समजाते हैं - 'ऐहिके पारलोके च सर्वथा शरणं हरिः - इहलोक एवं परलोक सम्बन्धी सभी विषयो में सर्वथा भगवान् ही शरण हैं' इस प्रकार के आश्रय की दृढता के लिए जीवको सदा ही 'विवेक' एवं 'धैर्य'की रक्षा करनी चाहिए. विवेक का अर्थ है - 'हरिः सर्वं निजेच्छातः करिष्यति - हरि सब कुछ अपनी इच्छा से ही करेंगे', धैर्य का अर्थ है - 'त्रिदुःखसहनं धैर्यम् आमृतेः सर्वतः सदा - सभी और से आते तीनों प्रकारके दुःखों को मृत्यु पर्यन्त सदा सहन करना' अर्थात् हमारी अपेक्षा से विपरीत ऐसी किसी भी परिस्थिति में अविचल रह पाने का सामर्थ्य हमारे अंदर पनपना चाहिए. यह विवेक एवं धैर्य हमारे श्रीकृष्ण के प्रति आश्रयभाव को सुदृढ बनाते हैं.

हम; भगवदाश्रय के सुदृढ धरातल पर अविचल स्थिर रहें इसी भाव के साथ विवेकधैर्याश्रय ग्रन्थ का पाठ एवं अर्थानुसन्धान करना चाहिए.

विवेकधैर्ये सततं रक्षणीये तथाश्रय:।।
विवेकस्तु हरि: सर्वं निजेच्छात: करिष्यति ।।१।।
प्रार्थिते वा तत: किं स्यात् स्वाम्यभिप्राय-संशयात् ।।
सर्वत्र तस्य सर्वं हि सर्वसामर्थ्यमेव च ।।२।।
अभिमानश्च सन्त्याज्य: स्वाम्यधीनत्व-भावनात् ।।
विशेषतश्चेदाज्ञा स्यादन्त:करणगोचर: ।।३।।
तदा विशेषगत्यादि भाव्यं भिन्नन्तु दैहिकात् ।।
आपद्-गत्यादि-कार्येषु हठस्त्याज्यश्च सर्वथा ।।४।।
अनाग्रहश्च सर्वत्र धर्माधर्माग्र-दर्शनम् ।।
विवेकोऽयं समाख्यातो धैर्यन्तु विनिरूप्यते ।।५।।
त्रिदु:खसहनं धैर्यम् आमृते: सर्वत: सदा ।।
तक्रवद् देहवद् भाव्यं जडवद् गोपभार्यवत् ।।६।।
प्रतीकारो यदृच्छात: सिद्धश्चेन्नाग्रही भवेत् ।।
भार्यादीनां तथान्येषाम् असतश्चाक्रमं सहेत् ।।७।।
स्वयमिन्द्रिय-कार्याणि काय-वाङ्-मनसा त्यजेत् ।।
अशूरेणापि कर्तव्यं स्वस्यासामर्थ्य-भावनात् ।।८।।
अशक्ये हरिरेवास्ति सर्वमाश्रयतो भवेत् ।।
एतत् सहनमत्रोक्तम् आश्रयोऽतो निरूप्यते ।।९।।
ऐहिके पारलोके च सर्वथा शरणं हरि: ।।
दु:खहानौ तथा पापे भये कामाद्यपूरणे ।।१०।।
भक्तद्रोहे भक्त्यभावे भक्तैश्चातिक्रमे कृते ।।
अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरि: ।।११।।
अहंकार-कृते चैव पोष्य-पोषण-रक्षणे ।।
पोष्यातिक्रमणे चैव तथान्तेवास्यतिक्रमे ।।१२।।
अलौकिक-मन:सिद्धौ सर्वथा शरणं हरि: ।।
एवं चित्ते सदा भाव्यं वाचा च परिकीर्तयेत् ।।१३।।

अन्यस्य भजनं तत्र स्वतोगमनमेव च ।।
प्रार्थना कार्यमात्रेऽपि तथान्यत्र विवर्जयेत् ।।१४।।
अविश्वासो न कर्तव्य: सर्वथा बाधकस्तु स: ।।
ब्रह्मास्त्र-चातकौ भाव्यौ प्राप्तं सेवेत निर्मम: ।।१५।।
यथाकथञ्चित् कार्याणि कुर्यादुच्चावचान्यपि ।।
किंवा प्रोक्तेन बहुना शरणं भावयेद्धरिम् ।।१६।।
एवमाश्रयणं प्रोक्तं सर्वेषां सर्वदा हितम् ।।
कलौ भक्त्यादिमार्गाहि दु:साध्या इति मे मति: ।।१७।।

।। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितो विवेकधैर्याश्रयः सम्पूर्णः ।।

।। कृष्णाश्रयस्तोत्रम् ।।

श्रीवल्लभाचार्यचरणने श्रीकृष्णाश्रयस्तोत्रकी रचना अडेलमें लाहोरके बूला मिश्रके लिए की थी. भगवदाज्ञासे बूला मिश्र श्रीवल्लभके पास आये एवं आचार्यचरणसे भगवद्भक्ति प्राप्ति की इच्छा प्रकट की. उनकी तत्परता जानकर श्रीवल्लभने बूला मिश्रको पुष्टिमार्गमें दीक्षित किया एवं मानसी सेवोपयोगी मनकी सिद्धिके हेतु श्रीकृष्णाश्रयस्तोत्र उन्हें पढाया.

सर्वके मूल श्रीकृष्ण हैं. हम यदि कृष्ण एव गतिर्मम - यह सूत्र ग्रहण कर लेते हैं तब तो सब कुछ ठीक है, अन्यथा कुछ भी ठीक नहीं. धर्मनिर्वाहक काल-देश-द्रव्य-कर्ता-मन्त्र-कर्म यह धर्मके छे अङ्ग दोषपूर्ण है एवं आत्मकल्याणकारक कर्म-ज्ञान-भक्ति मार्ग भी श्रीकृष्णके आश्रय के बिना अधूरे हैं.

श्रीकृष्ण का आश्रय तो सदा - सर्वदा ही हितकारक होता है. 'कृष्ण एव गतिर्मम' का बोध हमारे भीतर सकारात्मक भाव एवं उर्जा उत्पन्न करता है - जीवन में उत्साह का संचार होता है. अनन्य एवं अविचल भगवदाश्रय सिद्धि हेतु श्रीकृष्णाश्रयस्तोत्र का पाठ करना चाहिए.

सर्वमार्गेषु नष्टेषु कलौ च खलधर्मिणि ।।
पाषण्डप्रचुरे लोके कृष्णएव गतिर्मम ।।१।।

म्लेच्छाक्रान्तेषु देशेषु पापैक-निलयेषु च ।।
सत्पीडा-व्यग्र-लोकेषु कृष्णएव गतिर्मम ।।२।।
गङ्गादि-तीर्थ-वर्येषु दुष्टैरेवावृतेष्विह ।।
तिरोहिताधिदैवेषु कृष्णएव गतिर्मम ।।३।।
अहंकारविमूढेषु सत्सु पापानुवर्तिषु ।।
लाभ-पूजार्थ-यत्नेषु कृष्णएव गतिर्मम ।।४।।
अपरिज्ञान-नष्टेषु मन्त्रेष्वव्रतयोगिषु ।।
तिरोहितार्थदेवेषु कृष्णएव गतिर्मम ।।५।।
नाना-वाद-विनष्टेषु सर्व-कर्म-व्रतादिषु ।।
पाषण्डैकप्रयत्नेषु कृष्णएव गतिर्मम ।।६।।
अजामिलादिदोषाणां नाशकोऽनुभवे स्थित: ।।
ज्ञापिताखिलमाहात्म्य: कृष्णएव गतिर्मम ।।७।।
प्राकृता: सकला देवा गणितानन्दकं बृहत् ।।
पूर्णानन्दो हरिस्तस्मात् कृष्णएव गतिर्मम ।।८।।
विवेकधैर्यभक्त्यादि-रहितस्य विशेषत: ।।
पापासक्तस्य दीनस्य कृष्णएव गतिर्मम ।।९।।
सर्वसामर्थ्यसहित: सर्वत्रैवाखिलार्थकृत् ।।
शरणस्थसमुद्धारं कृष्णं विज्ञापयाम्यहम् ।।१०।।
कृष्णाश्रयमिदं स्तोत्रं य: पठेत् कृष्णसन्निधौ ।।
तस्याश्रयो भवेत् कृष्ण इति श्रीवल्लभोऽब्रवीत् ।।११।।

।। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितं कृष्णाश्रयस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।।

।। चतु:श्लोकी ।।

श्रीवल्लभाचार्यचरण ने चतु:श्लोकी का उपदेश राणा व्यास एवं भगवानदास सांचोरा को किया था ऐसा उल्लेख ८४ वैष्णवों की वार्ता में प्राप्त होता है. पुष्टिमार्ग के चतुर्विध पुरुषार्थ का निरूपण चतु:श्लोकी का प्रतिपाद्य विषय है.

सर्वदा सर्वभाव से व्रजाधिप का भजन ही पुष्टिमार्गीय धर्म है, सब पुष्टिजीव निश्चिन्त रहें क्योंकि सर्वसामर्थ्यवान् प्रभु ही पुष्टिमार्ग में अर्थ पुरुषार्थ रूप हैं, यदि श्रीगोकुल के अधिपति को हृदय में धारण कर लिया तो बतायें अन्य क्या कामना शेष रह जायेगी ! अर्थात् पुष्टिमार्ग में भगवान् को हृदय में धारण करने से अतिरिक्त अन्य कोई काम पुरुषार्थ हो ही नहीं सकता, इसलिए सर्वात्मभाव से गोकुल के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों का स्मरण एवं भजन निरन्तर होता रहे ये ही पुष्टिमार्गीय मोक्ष है.

हमारी रति-मति-कृति श्रीकृष्णगामी हो इस भावना के साथ चतुःश्लोकी ग्रन्थ का पाठ करना चाहिए.

सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः।।
स्वस्यायमेव धर्मोहि नान्यः क्वापि कदाचन ।।१।।
एवं सदा स्म कर्तव्यं स्वयमेव करिष्यति ।।
प्रभुः सर्वसमर्थोहि ततो निश्चिन्ततां व्रजेत् ।।२।।
यदि श्रीगोकुलाधीशो धृतः सर्वात्मना हृदि ।।
ततः किमपरं ब्रूहि लौकिकैर्वैदिकैरपि ।।३।।
अतः सर्वात्मना शश्वद् गोकुलेश्वरपादयोः ।।
स्मरणं भजनं चापि न त्याज्यमिति मे मतिः ।।४।।

।। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचिता चतुःश्लोकी सम्पूर्णा ।।

।। भक्तिवर्धिनी ।।

श्रीवल्लभाचार्यचरण ने भक्तिवर्धिनी ग्रन्थ की रचना पुरुषोत्तम जोशी के लिए की है. एक समय जब श्रीआचार्यचरण; गुजरात के किसी गांवमें पधारे थे और एक तालाब के किनारे पर सन्ध्यावन्दन कर रहे थे तब वहां पुरुषोत्तम जोशी आये एवं उन्होने श्रीवल्लभ को प्रणाम करके प्रश्न किया, 'महाराज ! यह कर्ममारग बडो के ज्ञानमारग बडो ?' तब श्रीआचार्यजी कहे - 'जाके मनमें दृढ जो मारग आवे, जामें जाको विश्वास होय, वाके भये तो वह मारग बडो; और बडो तो भक्तिमारग है जामें जीव कृतार्थ होई.' तब पुरुषोत्तम जोशी ने भक्ति का स्वरूप जानने की इच्छा प्रकट की, तब श्रीआचार्यजी ने भक्तिवर्धिनी ग्रन्थ का प्रणयन करके उन्हे पुष्टिजीवों में प्रभु ने स्वयं के प्रति सूक्ष्म स्नेह रूप

बीजभाव स्थापित किया है. इस बीजभाव की प्रवृद्धि के उपाय भक्तिवर्धिनी में निरूपित हुए हैं. अव्यावृत्त होने पर भगवान् श्रीकृष्ण की अपने घर में सेवा एवं श्रवण-कीर्तन आदि करने से तथा व्यावृत्त होने पर भी भगवान् के श्रवणादि में चित्त को लगाने से हमारे भीतर रही हुई सूक्ष्म स्नेह रूपा भक्ति क्रमशः भगवान् के प्रति प्रेम, आसक्ति एवं व्यसन के रूपमें विकसित होती है.

श्रीआचार्यचरण की कृपासे हमारी भगवद्भक्ति उच्चतर अवस्था को प्राप्त करे इसी भावना के साथ भक्तिवर्धिनी ग्रन्थ का पाठ एवं अर्थानुसन्धान करना चाहिए.

यथा भक्तिः प्रवृद्धा स्यात् तथोपायो निरूप्यते ।।
बीजभावे दृढे तु स्यात् त्यागाच्छ्रवणकीर्तनात् ।।१।।
बीजदार्ढ्य-प्रकारस्तु गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः ।।
अव्यावृत्तो भजेत्कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः ।।२।।
व्यावृत्तोऽपि हरौ चित्तं श्रवणादौ न्यसेत् सदा ।।
ततः प्रेम तथासक्तिः व्यसनं च यदा भवेत् ।।३।।
बीजं तदुच्यते शास्त्रे दृढं यन्नापि नश्यति ।।
स्नेहाद् रागविनाशः स्याद् आसक्त्या स्याद् गृहारुचिः ।।४।।
गृहस्थानां बाधकत्वम् अनात्मत्वं च भासते ।।
यदा स्याद् व्यसनं कृष्णे कृतार्थः स्यात् तदैव हि ।।५।।
तादृशस्यापि सततं गेहस्थानं विनाशकम् ।।
त्यागं कृत्वा यतेद् यस्तु तदर्थार्थैकमानसः ।।६।।
लभते सुदृढां भक्तिं सर्वतोऽप्यधिकां पराम् ।।
त्यागे बाधकभूयस्त्वं दुःसंसर्गात् तथान्नतः ।।७।।
अतः स्थेयं हरिस्थाने तदीयैः सह तत्परैः ।।
अदूरे विप्रकर्षे वा यथा चित्तं न दुष्यति ।।८।।
सेवायां वा कथायां वा यस्यासक्तिर्दृढा भवेत् ।।
यावज्जीवं तस्य नाशो न क्वापीति मतिर्मम ।।९।।
बाधसम्भावनायान्तु नैकान्ते वास इष्यते ।।

हरिस्तु सर्वतो रक्षां करिष्यति न संशय: ।।१०।।
इत्येवं भगवच्छास्त्रं गूढतत्त्वं निरूपितम् ।।
य एतत् समधीयीत तस्यापि स्याद् दृढा रति: ।।११।।

।। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचिता भक्तिवर्धिनी सम्पूर्णा ।।

।। जलभेद: ।।

भक्तिवर्धिनी में भक्ति की वृद्धि के लिए 'श्रवण' करने का उपदेश दिया गया है. श्रवण करने के लिए 'वक्ता'की आवश्यकता होती है. किस प्रकारका वक्ता हमारे भक्तिभाव को बढाने वाला होगा एवं किस प्रकार का वक्ता हमारी भगवद्भक्ति के अनुकूल नहीं होगा इसका निर्णय जानना आवश्यक है. अत: वक्ताओं के विविध प्रकार एवं उसके श्रोताओं पर पडने वाले प्रभावों का निरूपण जलभेद ग्रन्थमें किया गया है.

जल स्वभावत: स्वच्छ, मधुर एवं शीतल होनेपर भी पात्र या स्थान के अनुसार गुणधर्मों को धारण कर लेता है; जैसे - समुद्रका जल खारा, गढ्ढे का जल मलिन एवं झरने का जल शीतल - स्वच्छ होता है. इसी तरह भगवान् के सर्वसुखकारी गुण भी वक्ता के भाव के अनुरूप भिन्न परिणाम देने वाले बन जाते हैं.

तैत्तिरीय संहिता में जलके बीस रूप गिनाए गये हैं. उसी तरह वक्ताओं के भी बीस भावभेद 'जलभेद' ग्रन्थ में निरूपित हुए हैं.

नमस्कृत्य हरिं वक्ष्ये तद्गुणानां विभेदकान् ।।
भावान् विंशतिधा भिन्नान् सर्व-सन्देह-वारकान् ।।१।।
गुणभेदास्तु तावन्तो यावन्तोहि जले मता: ।।
गायका: कूपसंकाशा 'गन्धर्वा' इति विश्रुता: ।।२।।
कूपभेदास्तु यावन्तस्तावन्तस्तेपि सम्मता: ।।
'कुल्या:' पौराणिका: प्रोक्ता: पारम्पर्ययुता भुवि ।।३।।
क्षेत्रप्रविष्टास्ते चापि संसारोत्पत्तिहेतव: ।।
वेश्यादिसहिता मत्ता गायका 'गर्त'संज्ञिता: ।।४।।
जलार्थमेव गर्तास्तु नीचा गानोपजीविन: ।।

‘ह्रदा’स्तु पण्डिता: प्रोक्ता भगवच्छास्त्र-तत्परा: ।।५।।
सन्देह-वारकास्तत्र ‘सूदा’ गम्भीरमानसा: ।।
‘सर:-कमल-सम्पूर्णा:’ प्रेमयुक्तास्तथा बुधा: ।।६।।
अल्पश्रुता: प्रेमयुक्ता ‘वेशन्ता:’ परिकीर्तिता: ।।
कर्मशुद्धा: ‘पल्वलानि’ तथाल्पश्रुत-भक्तय: ।।७।।
योग-ध्यानादि-संयुक्ता गुणा ‘वर्ष्या’ प्रकीर्तिता: ।।
तपो-ज्ञानादि-भावेन ‘स्वेदजा’स्तु प्रकीर्तिता: ।।८।।
अलौकिकेन ज्ञानेन ये तु प्रोक्ता हरेर्गुणा: ।।
कादाचित्का: शब्दगम्या: ‘पतच्छब्दा’ प्रकीर्तिता: ।।९।।
देवाद्युपासनोद्भूता: ‘पृष्वा’ भूमेरिवोद्गता: ।।
साधनादिप्रकारेण नवधा भक्तिमार्गत: ।।१०।।
प्रेमपूर्त्या स्फुरद्धर्मा: ‘स्यन्दमाना:’ प्रकीर्तिता: ।।
यादृशास्तादृशा: प्रोक्ता वृद्धि-क्षय-विवर्जिता: ।।११।।
‘स्थावरास्’ ते समाख्याता मर्यादैक-प्रतिष्ठिता: ।।
अनेक-जन्म-संसिद्धा जन्म-प्रभृति सर्वदा ।।१२।।
सङ्गादि-गुण-दोषाभ्यां वृद्धि-क्षय-युता भुवि ।।
निरन्तरोद्गमयुता ‘नद्यस्’ ते परिकीर्तिता: ।।१३।।
एतादृशा: स्वतन्त्राश्चेत् ‘सिन्धव:’ परिकीर्तिता: ।।
पूर्णा भगवदीया ये शेष-व्यासाग्नि-मारुता: ।।१४।।
जड-नारद-मैत्राद्यास् ते ‘समुद्रा:’ प्रकीर्तिता: ।।
लोक-वेद-गुणैर्मिश्र-भावेनैके हरेर्गुणान् ।।१५।।
वर्णयन्ति समुद्रास्ते ‘क्षाराद्या: षट्’ प्रकीर्तिता: ।।
गुणातीततया शुद्धान् सच्चिदानन्दरूपिण: ।।१६।।
सर्वानेव गुणान् विष्णोर्वर्णयन्ति विचक्षणा: ।।
ते‘ऽमृतोदा:’ समाख्यातास्तद्वाक्पानं सुदुर्लभम् ।।१७।।

तादृशानां क्वचिद्वाक्यं दूतानामिव वर्णितम् ।।
अजामिलाकर्णनवद् बिन्दुपानं प्रकीर्तितम् ।।१८।।
रागाज्ञाना-दिभावानां सर्वथा नाशनं यदा ।।
तदा लेहनमित्युक्तं स्वानन्दोद्गमकारणम्।।१९।।
उद्धृतोदकवत् 'सर्वे' पतितोदकवत् तथा ।।
उक्तातिरिक्तवाक्यानि फलं चापि तथा ततः ।।२०।।
इति जीवेन्द्रियगता नाना-भावं गता भुवि ।।
रूपतः फलतश्चैव गुणा विष्णोर्निरूपिताः ।।२१।।

।। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितो जलभेदः सम्पूर्णः ।।

।। पञ्चपद्यानि ।।

जैसे श्रवण की इच्छा वाले भक्त को योग्य वक्ता की अपेक्षा है, उसी तरह कीर्तन करने वाले के लिए श्रोता की योग्यता का विचार प्राप्त है. अतः पञ्चपद्यानि ग्रन्थ में श्रीवल्लभाचार्यचरण ने श्रोताओंकी उत्तम - मध्यम - कनिष्ठ कक्षा का निरूपण किया है.

श्रीकृष्णरसविक्षिप्त-मानसा रतिवर्जिताः ।।
अनिर्वृता लोकवेदे ते मुख्याः श्रवणोत्सुकाः ।।१।।
विक्लिन्नमनसो येतु भगवत्स्मृति-विह्वलाः ।।
अर्थैकनिष्ठास्ते चापि मध्यमाः श्रवणोत्सुकाः ।।२।।
निःसन्दिग्धं कृष्णतत्त्वं सर्वभावेन ये विदुः ।।
ते त्वावेशात्तु विकला निरोधाद्वा न चान्यथा ।।३।।
पूर्णभावेन पूर्णार्थाः कदाचिन्न तु सर्वदा ।।
अन्यासक्तास्तु ये केचिद् अधमाः परिकीर्तिताः ।।४।।
अनन्यमनसो मर्त्या उत्तमाः श्रवणादिषु ।।
देश-काल-द्रव्य-कर्तृ-मन्त्र-कर्म-प्रकारतः ।।५।।

।। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितानि पञ्चपद्यानि ।।

।। संन्यासनिर्णय: ।।

संन्यासनिर्णयग्रन्थ की रचना श्रीवल्लभाचार्यचरण ने बद्रिकाश्रम में नरहरि संन्यासी के लिए की है.

जीव के कल्याण के लिए शास्त्र में तीन प्रमुख मार्ग बताये गये हैं - (१) कर्ममार्ग (२) ज्ञानमार्ग एवं (३) भक्तिमार्ग. तीनों ही मार्गो में अधिकार एवं अवस्था के अनुसार साधकों के लिए संन्यास के प्रकार निरूपित है. सोचे समजे बिना किसी के कहने से अथवा मात्र वैराग्य के भ्रम में यदि कोई संन्यास ग्रहण कर लेता है, तो आत्मकल्याण के पथ से भ्रष्ट हो सकता है. बाद में पश्चात्ताप करने का अवसर आये उससे अच्छा है प्रथम ही संन्यासके सारे प्रकारों की उपादेयता - अनुपादेयता के बारे में जानकारी प्राप्त कर ली जाये.

श्रीमहाप्रभुजी समझाते हैं कि - कलियुग में कर्ममार्गीय संन्यास तो निषिद्ध ही है. ज्ञानमार्ग में भी कलियुग के प्रबल दोषों के कारण साधक पाखंडी बन जाता है. साधनावस्था में भक्तिमार्गीय संन्यास भी कल्याणकारी नहीं है. भक्तिमार्गीय साधना की उच्चतर अवस्था में भगवद्विरह की अनुभूति के लिए संन्यास प्रशस्त हो सकता है, पर इस परित्याग की सिद्धि भी है तो दुर्लभ ही. इन सारे विषयों का विस्तृत विचार श्रीआचार्यचरण ने संन्यासनिर्णय ग्रन्थ में किया है.

पश्चात्ताप-निवृत्त्यर्थं परित्यागो विचार्यते ।।
स मार्गद्वितये प्रोक्तो भक्तौ ज्ञाने विशेषत: ।।१।।
कर्ममार्गे न कर्तव्य: सुतरां कलिकालत: ।।
अत आदौ भक्तिमार्गे कर्तव्यत्वाद् विचारणा ।।३।।
श्रवणादिप्रसिद्ध्यर्थं कर्तव्यश्चेत् स नेष्यते ।।
सहाय-सङ्ग-साध्यत्वात् साधनानां च रक्षणात् ।।३।।
अभिमानान्नियोगाच्च तद्धर्मैश्च विरोधत: ।।
गृहादेर्बाधकत्वेन साधनार्थं तथा यदि ।।४।।
अग्रेऽपि तादृशैरेव सङ्गो भवति नान्यथा ।।
स्वयञ्च विषयाक्रान्त: पाषण्डी स्यात्तु कालत: ।।५।।
विषयाक्रान्तदेहानां नावेश: सर्वदा हरे: ।।
अतोऽत्र साधने भक्तौ नैव त्याग: सुखावह: ।।६।।

विरहानुभवार्थन्तु परित्यागः प्रशस्यते ।।
स्वीय-बन्ध-निवृत्त्यर्थं वेशः सोऽत्र न चान्यथा ।।७।।
कौण्डिन्यो गोपिकाः प्रोक्ताः गुरवः साधनं च तद्- ।।
भावो भावनया सिद्धः साधनं नान्यदिष्यते ।।८।।
विकलत्वं तथास्वास्थ्यं प्रकृतिः प्राकृतं नहि ।।
ज्ञानं गुणाश्च तस्यैवं वर्तमानस्य बाधकाः ।।९।।
सत्यलोके स्थितिर्ज्ञानात् संन्यासेन विशेषितात् ।।
भावना साधनं यत्र फलं चापि तथा भवेत् ।।१०।।
तादृशाः सत्यलोकादौ तिष्ठन्त्येव न संशयः ।।
बहिश्चेत् प्रकटः स्वात्मा वह्निवत् प्रविशेद्यदि ।।११।।
तदैव सकलो बन्धो नाशमेति न चान्यथा ।।
गुणास्तु सङ्गराहित्याद् जीवनार्थं भवन्ति हि ।।१२।।
भगवान् फलरूपत्वान्नात्र बाधक इष्यते ।।
स्वास्थ्यवाक्यं न कर्तव्यं दयालुर्न विरुध्यते ।।१३।।
दुर्लभोऽयं परित्यागः प्रेम्णा सिध्यति नान्यथा ।।
ज्ञानमार्गेतु संन्यासो द्विविधोऽपि विचारितः ।।१४।।
ज्ञानार्थम् उत्तराङ्गं च सिद्धिर्जन्मशतैः परम् ।।
ज्ञानं च साधनापेक्षं यज्ञादिश्रवणान्मतम् ।।१५।।
अतः कलौ स संन्यासः पश्चात्तापाय नान्यथा ।।
पाषण्डित्वं भवेच्चापि तस्माज्ज्ञाने न संन्यसेत् ।।१६।।
सुतरां कलिदोषाणां प्रबलत्वादिति स्थितिः ।।
भक्तिमार्गेऽपि चेद् दोषः तदा किं कार्यमुच्यते ।।१७।।
अत्रारम्भे न नाशः स्याद् दृष्टान्तस्याप्यभावतः ।।
स्वास्थ्यहेतोः परित्यागाद् बाधः केनास्य सम्भवेत् ।।१८।।
हरिरत्र न शक्नोति कर्तुं बाधां कुतोऽपरे ! ।।
अन्यथा मातरो बालान्न स्तन्यैः पुपुषुः क्वचित् ।।१९।।

ज्ञानिनामपि वाक्येन न भक्तं मोहयिष्यति ।।
आत्मप्रदः प्रियश्चापि किमर्थं मोहयिष्यति? ।।२०।।
तस्मादुक्त-प्रकारेण परित्यागो विधीयताम् ।।
अन्यथा भ्रश्यते स्वार्थाद् इति मे निश्चिता मतिः ।।२१।।
इति कृष्णप्रसादेन वल्लभेन विनिश्चितम् ।।
संन्यासवरणं भक्तावन्यथा पतितो भवेत् ।।२२।।

।। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितः संन्यासनिर्णयः सम्पूर्णः ।।

।। निरोधलक्षणम् ।।

निरोधलक्षण ग्रन्थ की रचना श्रीवल्लभाचार्यचरण ने अपने शिष्य राजा दुबे - माधौ दुबे के लिए की है. एक समय श्रीआचार्यजी द्वारका पधारे थे तब राजा दुबे - माधव दुबे आपश्री के सेवक हुए. श्रीआचार्यजी ने उन्हे भगवत्स्वरूप पधराते हुए आज्ञा की कि -'सब ठोरते मन छुटाइ निरोध करि भगवत्सेवा करो.' राजा दुबे माधौ दुबे ने विनती की 'महाराज ! निरोधको स्वरूप कहा है ?' तब श्रीआचार्यजी ने निरोधलक्षण ग्रन्थका प्रणयन कर के उन्हे पाठ कराया और आज्ञा की 'तुम दोऊ भाईनको निरोध सिद्ध होयगो' तत्काल दोनों भाइयों का मन अलौकिक हो गया एवं उन्हे भगवल्लीलारस का अनुभव होने लगा.

निरोध का अर्थ है 'प्रपंच-विस्मृतिपूर्वक भगवान् में आसक्त हो जाना' श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में प्रभु की वह लीला निरूपित हुई है जिससे भक्त; भगवान् में निरूद्ध हो जाता है. वहां कहा गया है कि 'उन भक्तों की ऐसी स्थिति हो गई कि वे सोते - जागते, चलते, वार्तालाप करते, क्रीडा अथवा स्नान करते एवं भोजन करते हुए भी अपनी सारी सुध-बुध खोकर केवल श्रीकृष्ण ही में तल्लीन रहते थे'

निरोधलक्षण के प्रथम दो श्लोकों में श्रीवल्लभ ने इसी तल्लीनता की आशंसा की है -'गोकुलमें श्रीयशोदाजी - नन्दरायजी एवं गोपीजनों को भगवद्विरह में जिस प्रकार दुःख का अनुभव हुआ था ऐसा ताप हमें भी कभी हो ! गोपिकाओं को एवं सर्व व्रजवासियों को जो सुख प्रभु ने प्रदान किया था क्या ऐसा सुख मुझे भी प्राप्त होगा !' जो आनन्द प्रभु ने व्रजभक्तों को प्रदान किया ऐसा कुछ आनन्द आप कृपा करके; हमें भी प्रदान करें इसी अभिलाषा के साथ निरोधलक्षण ग्रन्थ का पाठ एवं अर्थानुसन्धान करना चाहिए.

यच्च दु:खं यशोदाया नन्दादीनां च गोकुले।।
गोपिकानान्तु यद् दु:खं तद् दु:खं स्यान्मम क्वचित् ।।१।।
गोकुले गोपिकानां च सर्वेषां व्रजवासिनाम् ।।
यत् सुखं समभूत् तन्मे भगवान् किं विधास्यति ।।२।।
उद्धवागमने जात उत्सव: सुमहान् यथा ।।
वृन्दावने गोकुले वा तथा मे मनसि क्वचित् ।।३।।
महतां कृपया यावद् भगवान् दययिष्यति ।।
तावदानन्दसन्दोह: कीर्त्यमान: सुखाय हि ।।४।।
महतां कृपया यद्वत् कीर्तनं सुखदं सदा ।।
न तथा लौकिकानां तु स्निग्धभोजनरूक्षवत् ।।५।।
गुणगाने सुखावाप्तिर्गोविन्दस्य प्रजायते ।।
यथा तथा शुकादीनां नैवात्मनि कुतोऽन्यत: ।।६।।
क्लिश्यमानान् जनान् दृष्ट्वा कृपायुक्तो यदा भवेत् ।।
तदा सर्वं सदानन्दं हृदिस्थं निर्गतं बहि: ।।७।।
सर्वानन्दमयस्यापि कृपानन्द: सुदुर्लभ: ।।
हृद्गत: स्वगुणान् श्रुत्वा पूर्ण: प्लावयते जनान्।।८।।
तस्मात् सर्वं परित्यज्य निरुद्धै: सर्वदा गुणा: ।।
सदानन्दपरैर्गेया: सच्चिदानन्दता तत: ।।९।।
अहं निरुद्धो रोधेन निरोधपदवीं गत: ।।
निरुद्धानान्तु रोधाय निरोधं वर्णयामि ते ।।१०।।
हरिणा ये विनिर्मुक्तास्ते मग्ना भवसागरे ।।
ये निरुद्धास्तएवात्र मोदमायान्त्यहर्निशम् ।।११।।
संसारावेशदुष्टानाम् इन्द्रियाणां हिताय वै ।।
कृष्णस्य सर्ववस्तूनि भूम्न ईशस्य योजयेत् ।।१२।।
गुणेष्वाविष्ट-चित्तानां सर्वदा मुरवैरिण: ।।

संसार-विरह-क्लेशौ न स्यातां हरिवत् सुखम् ।।१३।।
तदा भवेद् दयालुत्वम् अन्यथा क्रूरता मता ।।
बाधशंकापि नास्त्यत्र तदध्यासोऽपि सिध्यति ।।१४।।
भगवद्धर्मसामर्थ्याद् विरागो विषये स्थिरः ।।
गुणैर्हरि-सुख-स्पर्शान्न दुःखं भाति कर्हिचित् ।।१५।।
एवं ज्ञात्वा ज्ञानमार्गाद् उत्कर्षो गुणवर्णने ।।
अमत्सरैरलुब्धैश्च वर्णनीयाः सदा गुणाः ।।१६।।
हरिमूर्तिः सदा ध्येया संकल्पादपि तत्रहि ।।
दर्शनं स्पर्शनं स्पष्टं तथा कृतिगती सदा ।।१७।।
श्रवणं कीर्तनं स्पष्टं पुत्रे कृष्णप्रिये रतिः ।।
पायोर्मलांशत्यागेन शेषभागं तनौ नयेत् ।।१८।।
यस्य वा भगवत्कार्यं यदा स्पष्टं न दृश्यते ।।
तदा विनिग्रहस्तस्य कर्तव्य इति निश्चयः ।।१९।।
नातः परतरो मन्त्रो नातः परतरः स्तवः ।।
नातः परतरा विद्या तीर्थं नातः परात्परम् ।।२०।।

।। इति श्रीवल्लभाचार्यप्रकटितं निरोधलक्षणं सम्पूर्णम् ।।

।। सेवाफलम् ।।

सेवाफल ग्रन्थ की रचना श्रीमहाप्रभुजी ने अपने शिष्य विष्णुदास छीपा के लिए की है. ब्रह्मसम्बन्ध दीक्षा प्राप्त करके विष्णुदास ने श्रीआचार्यचरण से विनती की - 'महाराज ! में मूरख हों, सो ऐसी कृपा करो जो श्रीभागवत आदि आप के ग्रन्थनमें कछु ज्ञान होई, आपके मारग को सिद्धान्त जान्यो जाई.' तब श्रीआचार्यजी ने सेवाफल ग्रन्थ की रचना करके विष्णुदास को सुनाया. ग्रन्थ का अभिप्राय जानने में विष्णुदास को कठिनाई हुई तो ग्रन्थ का विवरण भी करके समझाया. तब विष्णुदास को मार्ग का सिद्धान्त हृदयारूढ हुआ और वे तन्मय हो गये.

ग्रन्थनाम से ही स्पष्ट है - पुष्टिमार्गीय भगवत्सेवा के फल का निरूपण इस में किया गया है. संलग्नतया भगवत्सेवा में आते प्रतिबन्धों का विचार भी किया गया है.

सेवा में तीन फल हैं - (१) अलौकिक सामर्थ्य (२) सायुज्य (३) वैकुण्ठादिमें सेवोपयोगिदेह. सेवा में प्रतिबन्धक भी तीन हैं - (१) उद्वेग (२) प्रतिबन्ध (३) भोग.

जिस प्रकार विष्णुदास को श्रीवल्लभाचार्यचरण का मार्ग हृदयस्थ हुआ, उसी प्रकार हमारे अन्त:करण में भी श्रीआचार्यचरण के सर्वोत्तम सिद्धान्त स्फुरित हों - भगवत्सेवा में प्रतिबन्धक निवृत्त हों तथा हमारी भगवत्सेवा फलरूप बनें; इन भावनाओं के साथ सेवाफल ग्रन्थ का पाठ तथा अभ्यास करें.

यादृशी सेवना प्रोक्ता तत्सिद्धौ फलमुच्यते ।।
अलौकिकस्य दानेहि चाद्य: सिध्येन्मनोरथ: ।।१।।
फलं वा ह्यधिकारो वा न कालोऽत्र नियामक: ।।
उद्वेग: प्रतिबन्धो वा भोगो वा स्यात्तु बाधकम् ।।२।।
अकर्तव्यं भगवत: सर्वथा चेद् गतिर्नहि ।।
यथा वा तत्त्वनिर्धारो विवेक: साधनं मतम् ।।३।।
बाधकानां परित्यागो भोगेऽप्येकं तथा परम् ।।
निष्प्रत्यूहं महान् भोग: प्रथमे विशते सदा ।।४।।
सविघ्नोऽल्पो घातक: स्याद् बलादेतौ सदा मतौ ।।
द्वितीये सर्वथा चिन्ता त्याज्या संसारनिश्चयात् ।।५।।
नत्वाद्ये दातृता नास्ति तृतीये बाधकं गृहम् ।।
अवश्येयं सदा भाव्या सर्वमन्यन् मनोभ्रम: ।।६।।
तदीयैरपि तत्कार्यं पुष्टौ नैव विलम्बयेत् ।।
गुणक्षोभेऽपि द्रष्टव्यम् एतदेवेति मे मति: ।।७।।
कुसृष्टिरत्र वा काचिद् उत्पद्येत स वै भ्रम: ।।

।। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितं सेवाफलं सम्पूर्णम् ।।

।। इति षोडशग्रन्था: ।।

।। पञ्चश्लोकी ।।

यह सारी सृष्टि ईशावास्य (ईश्वर से व्याप्त) है एवं यहां जो कुछ है वह भगवदर्थ ही है. अत: पञ्चश्लोकी के पांच श्लोकों श्रीआचार्यचरण ने प्रभु के प्रति समर्पण एवं शरणागति का उपदेश दिया है.

गृहं सर्वात्मना त्याज्यं तच्चेत् त्यक्तुं न शक्यते ।।
कृष्णार्थं तत् प्रयुञ्जीत कृष्णोऽनर्थस्य मोचक: ।।१।।
सङ्ग: सर्वात्मना त्याज्य: स चेत् त्यक्तुं न शक्यते ।।
स सद्भि: सह कर्तव्य: सन्त: सङ्गस्य भेषजम् ।।२।।
अनुकूले कलत्रादौ विष्णो: कार्याणि कारयेत् ।।
उदासीने स्वयं कुर्यात् प्रतिकूले गृहं त्यजेत् ।।३।।
तत् त्यागे दूषणं नास्ति यत: कृष्णबहिर्मुखा: ।।
अनुकूलस्य संकल्प: प्रतिकूलविसर्जनम् ।।४।।
करिष्यतीति विश्वासो भर्तृत्वे वरणं यथा ।।
आत्मनैवेद्यकार्पण्ये षड्विधा शरणागति: ।।५।।

।। इति श्रीमद्-वल्लभाचार्यकृता पञ्चश्लोकी समाप्ता ।।

सर्वनिर्णयप्रकरणान्तर्गतम्

।। साधनप्रकरणम् ।।

श्रीवल्लभाचार्यचरण ने तत्त्वार्थदीपनिबन्ध के तीन प्रकरणों की रचना की है. (१) शास्त्रार्थप्रकरण (२) सर्वनिर्णयप्रकरण (३) भागवतार्थप्रकरण.

सर्वनिर्णय प्रकरण में श्रीआचार्यचरण ने प्रमाण प्रमेय साधन फल चारों ही (= सर्व) विषयों पर अपना निर्णय स्पष्ट किया है. इस में साधन प्रकरण के अन्तर्गत श्लोक २१२ से श्लोक २५५ तक भक्तिमार्ग का विस्तृत विवेचन हुआ है.

कलिकाल में मर्यादामार्ग के सारे आचार नष्टप्राय हैं. भगवत्कृपा से प्राप्त भगवद्भक्ति का मार्ग ही जीव का उद्धारक है. जीव को आत्मकल्याण के लिए यथाधिकार भगवत्सेवा-तीर्थपर्यटन-श्रीमद्भागवतपाठ रूप भक्तिमार्ग अथवा प्रपत्तिमार्ग के साधन

सर्वनिर्णय निबन्ध अन्तर्गत यह भक्तिप्रकरण पुष्टिमार्गीय साधकों के लिए अत्यन्त पठनीय एवं मननीय है. इसका यथासम्भव पाठ के क्रम में समावेश करना चाहिए.

अधुना तु कलौ सर्वे विरुद्धाचार-तत्पराः ।।
स्वाध्यायादिक्रियाहीनाः तथाचार-पराङ्मुखाः ।।१।।
क्रियमाणं तथाचारं विधिहीनं प्रकुर्वते ।।
विक्षिप्तमनसो भ्रान्ता जिह्वोपस्थ-परायणाः ।।२।।
व्रात्यप्रायाः स्वतो दुष्टास्तत्र धर्मः कथं भवेत्! ।।
षड्भिः सम्पद्यते धर्मस्ते दुर्लभतराः कलौ ।।३।।
अथापि धर्ममार्गेण स्थित्वा कृष्णं भजेत् सदा ।।
श्रीभागवतमार्गेण स कथञ्चित् तरिष्यति ।।४।।
अत्रापि वेदनिन्दायाम् अधर्मकरणात् तथा ।।
नरके न भवेत् पातः किन्तु हीनेषु जायते ।।५।।
पूर्वसंस्कारतस्तत्र भजन् मुच्येत जन्मभिः ।।
अत्यन्ताभिनिवेशश्चेत् संसारे न भवेत् तदा ।।६।।
एतावन्मात्रताप्यस्ति मार्गेऽस्मिन् मुरवैरिणः ।।
सर्वत्यागेऽनन्यभावे कृष्णमात्रैकमानसे ।।७।।
सायुज्यं कृष्णदेवेन शीघ्रमेव ध्रुवं फलम् ।।
एतादृशस्तु पुरुषः कोटिष्वपि सुदुर्लभः ।।८।।
यो दारागार-पुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम् ।।
हित्वा कृष्णे परं-भावं-गतः प्रेमप्लुतः सदा ।।९।।
विशिष्टरूपं वेदार्थः फलं प्रेम च साधनम् ।।
तत्साधनं नवविधा भक्तिस्तत्प्रतिपादिका ।।१०।।
गीता सङ्क्षेपतस्तस्या वक्ता स्वयम् अभूद् हरिः ।।
तद्विस्तारो भागवतं सर्वनिर्णयपूर्वकम् ।।११।।

व्यास: समाधिना सर्वम् आह कृष्णोक्तमादित: ।।
मार्गोऽयं सर्वमार्गाणाम् उत्तम: परिकीर्तित: ।।१२।।
यस्मिन् पातभयं नास्ति मोचक: सर्वथा यत: ।।
वर्णाश्रमवतां धर्मे मुख्ये नष्टे छलेनतु ।।१३।।
क्रियमाणे न धर्म: स्याद् अतस्तस्मान्न मोचनम् ।।
बुद्धिमानादरं तस्मिन् छले साध्येऽपि दु:खत: ।।१४।।
त्यक्त्वा मार्गे ध्रुवफले भक्तिमार्गे समाविशेत् ।।
विरुद्धकरणं नास्ति प्रक्रिया न विरुध्यते ।।१५।।
कल्पितैरेव बाध: स्याद् अवोचाम प्रमाणताम् ।।
सर्वथा चेद् हरिकृपा न भविष्यति यस्यहि ।।१६।।
तस्य सर्वम् अशक्यं स्यान्मार्गेऽस्मिन् सुतरामपि ।।
कृपायुक्तस्यतु यथा सिध्येत् कारणमुच्यते ।।१७।।
कृष्णसेवापरं वीक्ष्य दम्भादिरहितं नरम् ।।
श्रीभागवत-तत्त्वज्ञं भजेज्जिज्ञासुरादरात् ।।१८।।
तदभावे स्वयं वापि मूर्तिं कृत्वा हरे: क्वचित् ।।
परिचर्यां सदा कुर्यात् तद्रूपं तत्र च स्थितम् ।।१९।।
साकार-व्यापकत्वाच्च मन्त्रस्यापि विधानत: ।।
श्रीकृष्णं पूजयेद् भक्त्या यथालब्धोपचारकै: ।।२०।।
यथा सुन्दरतां याति वस्त्रैराभरणैरपि ।।
अलंकुर्वीत सप्रेम तथा स्थानपुर:सरम् ।।२१।।
भार्यादिरनुकूलश्चेत् कारयेद् भगवत्-क्रियाम् ।।
उदासीने स्वयं कुर्यात् प्रतिकूले गृहं त्यजेत् ।।२२।।
तत्-त्यागे दूषणं नास्ति यतो विष्णु-पराङ्-मुखा: ।।
सर्वथा वृत्तिहीनश्चेद् एकं यामं हरौ नयेत् ।।२३।।
पठेच्च नियमं कृत्वा श्रीभागवतमादरात् ।।
सर्वं सहेत परुषं सर्वेषां कृष्णभावनात् ।।२४।।

वैराग्यं परितोषं च सर्वथा न परित्यजेत् ।।
एतद्-देहावसानेतु कृतार्थः स्यान्न संशयः ।।२५।।
इति निश्चित्य मनसा कृष्णं परिचरेत् सदा ।।
सर्वापेक्षां परित्यज्य दृढं कृत्वा मनः स्थिरम् ।।२६।।
दृढविश्वासतो युक्त्या यथा सिध्येत् तथाऽऽचरेत् ।।
वृथालापक्रियाध्यानं सर्वथैव परित्यजेत् ।।२७।।
यद्यदिष्टतमं लोके यच्चातिप्रियमात्मनः ।।
येन स्यान्निर्वृतिश्चित्ते तत् कृष्णे साधयेद् ध्रुवम् ।।२८।।
स्वयं परिचरेद् भक्त्या वस्त्रप्रक्षालनादिभिः ।।
एककालं द्विकालं वा त्रिकालं वापि पूजयेत् ।।२९।।
स्वधर्माचरणं शक्त्या विधर्माच्च निवर्तनम् ।।
इन्द्रियाश्व-विनिग्राहः सर्वथा न त्यजेत् त्रयम् ।।३०।।
एतद्विरोधि यत् किञ्चित् तत्तु शीध्रं परित्यजेत् ।।
धर्मादीनां तथा चास्य तारतम्यं विचारयन् ।।३१।।
यथा-यथा हरिः कृष्णो मनस्याविशते निजे ।।
तथा-तथा साधनेषु परिनिष्ठा विवर्धते ।।३२।।
कृष्णे सर्वात्मके नित्यं सर्वथा दीनभावना ।।
अहंकारं न कुर्वीत मानापेक्षां विवर्जयेत् ।।३३।।
सर्वथा तद्गुणालापं नामोच्चारणमेव वा ।।
सभायामपि कुर्वीत निर्भयो निःस्पृहस्ततः ।।३४।।
साधनं परमेतद्धि श्रीभागवतमादरात् ।।
पठनीयं प्रयत्नेन निर्हेतुकमदम्भतः ।।३५।।
शंखचक्रादिकं धार्यं मृदा पूजाङ्गमेव तत् ।।
तुलसीकाष्ठजा माला तिलकं लिङ्गमेव तत् ।।३६।।
एकादश्युपवासादि कर्तव्यं वेधवर्जितम् ।।
तथा कृष्णाष्टमी चापि सप्तमीवेधवर्जिता ।।३७।।

अन्यान्यपि तथा कुर्याद् उत्सवो यत्र वै हरे: ।।
एतत् सर्वं प्रयत्नेन गृहस्थस्य प्रकीर्तितम् ।।३८।।
अन्येषां सम्भवेत्तु स्याद् यते: पर्यटनं वरम् ।।
विक्षेपादथवाशक्त्या प्रतिबन्धादपि क्वचित् ।।३९।।
अत्याग्रहप्रवेशे वा परपीडादिसम्भवे ।।
तीर्थपर्यटनं श्रेष्ठं सर्वेषां वर्णिनां तथा ।।४०।।
यज्ञास्तीर्थानि च पुन: समानि हरिणा कृता: ।।
अतस्तेष्वप्रतिग्राही तद्दिनान्नाधिकस्यहि ।।४१।।
हतत्रप: पठेन्नित्यं नामानि च कृतानि च ।।
एकाकी निस्पृह: शान्त: पर्यटेत् कृष्णतत्पर: ।।४२।।
देहपातन-पर्यन्तम् अव्यग्रात्मा सदागति: ।।
उत्तमोत्तममेतद्धि पूर्वम् उत्तममीरितम् ।।४३।।
गृहं सर्वात्मना त्याज्यं तच्चेत् त्यक्तुं न शक्यते ।।
कृष्णार्थं तन्नियुञ्जीत कृष्ण: संसारमोचक: ।।४४।।
धनं सर्वात्मना त्याज्यं तच्चेत् त्यक्तुं न शक्यते ।।
कृष्णार्थं तत् प्रयुञ्जीत कृष्णोऽनर्थस्य वारक: ।।४५।।
अथवा सर्वदा शास्त्रं श्रीभागवतमादरात् ।।
पठनीयं प्रयत्नेन सर्व-हेतु-विवर्जितम् ।।४६।।
वृत्त्यर्थं नैव युञ्जीत प्राणै: कण्ठगतैरपि ।।
तदभावे यथैव स्यात् तथा निर्वाहमाचरेत् ।।४७।।
त्रयाणां येन केनापि भजन् कृष्णमवाप्नुयात् ।।
जगन्नाथे विट्ठले च श्रीरङ्गे वेंकटे तथा ।।४८।।
यत्र पूजाप्रवाह: स्यात् तत्र तिष्ठेत तत्पर: ।।
एतन्मार्गद्वयं प्रोक्तं गति-साधन-संयुतम् ।।४९।।

।।इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचिते श्रीभागवततत्त्वदीपे सर्वनिर्णयान्तर्गते साधनप्रकरणं संपूर्णम्।।

।। शिक्षापद्यानि ।।

श्रीवल्लभाचार्यचरण को पुन: निजधाम में पधारने की भगवदाज्ञा हुई. तृतीय आज्ञा के पश्चात् श्रीआचार्यचरण ने; काशी में संन्यास ग्रहण किया. उस समय आपश्रीके दोनों आत्मज श्रीगोपीनाथजी एवं श्रीविठ्ठलनाथजी; परिवारजन तथा सेवकवर्ग के साथ आपश्री के दर्शन करने पधारे. सभी ने श्रीआचार्यचरण से प्रार्थना की 'अब हमारो कहा कर्तव्य है ?' उस समय आपश्री ने मौनव्रत धारण कर रखा था; अत: श्रीगंगाजी की रेत पर साडे तीन श्लोकों का उपदेश लिख कर अपने दोनों पुत्र तथा सेवकों को दिया. वह उपदेश 'शिक्षापद्यानि' अथवा 'शिक्षाश्लोकी' नाम से प्रसिद्ध हुआ.

श्रीआचार्यचरण का यह शिक्षात्मक उपदेश हमें सदा श्रीकृष्णाभिमुख रहने के प्रति जागृत रखता है. इसका स्मरण - मनन करते रहने से हम पुष्टिपथ पर अधिक एकाग्रता एवं निष्ठा से चलने में समर्थ होंगे.

यदा बहिर्मुखा यूयं भविष्यथ कथञ्चन ।।
तदा कालप्रवाहस्था देहचित्तादयोऽप्युत ।।१।।
सर्वथा भक्षयिष्यन्ति युष्मानिति मतिर्मम ।।
न लौकिक: प्रभु: कृष्णो मनुते नैव लौकिकम् ।।२।।
भावस्तत्राप्यस्मदीय: सर्वस्वश्चैहिकश्च स: ।।
परलोकश्च तेनायं सर्वभावेन सर्वथा ।।३।।
सेव्य: स एव गोपीशो विधास्यत्यखिलं हि न: ।।

।। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितानि शिक्षापद्यानि समाप्तानि ।।

।। साधनदीपिका ।।

साधनदीपिका श्रीवल्लभाचार्यचरण के प्रथम पुत्र श्रीगोपीनाथजी द्वारा रचित है. अनेक पुष्टिमार्गीय ग्रन्थो में पुष्टिसिद्धान्तो के विभिन्न पक्षों का विवेचन हुआ है. परन्तु पुष्टिमार्गीय दिनचर्या का जितना क्रमबद्ध आलेखन साधनदीपिका में श्रीगोपीनाथजीने किया है; यह अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता.

मार्ग की प्रमाण व्यवस्था को श्रीगोपीनाथजी स्पष्ट करते हैं कि 'भक्तिमार्ग का विस्तार करने के लिए जो अवतरित हुए ऐसे अग्निस्वरूप

श्रीवल्लभाचार्यचरण ही हमारे लिए प्रमाण मूर्धन्य हैं' इसी आधार पर साधनदीपिका में गुरु की योग्यता -कर्तव्य, शिष्य के कर्तव्य, वर्णाश्रमधर्म सहित भगवद्धर्मों का पालन, सेव्यस्वरूप विचार, भगवत्सेवा प्रकार आदि अनेक अति आवश्यक पुष्टिमार्गीय विषयों पर बहुत स्पष्ट एवं क्रमबद्ध विचार किया गया है.

साधनदीपिका ग्रन्थ के उपसंहार में आपश्री आज्ञा करते हैं - 'भूतल पर जिस भक्त के दिन उपदिष्ट प्रकार से भगवद्भक्ति के अनुरूप व्यतीत होते हैं वह कृतार्थ है और भगवान् उसका स्वीकार करते हैं.'

श्रीगोपीनाथप्रभुचरण द्वारा प्रकटित साधनदीपिका के प्रकाश से हमारा मार्ग प्रशस्त हो इस भावना के साथ इस ग्रन्थ का पाठ एवं अभ्यास करें.

ता नः श्रीतात-पत्-पद्मरेणवः कामधेनवः ।।
नाकस्य तरवोऽन्येषां स्युः कल्पतरवो यथा ।।१।।
श्रुति-स्मृति-शिरोरत्न-नीराजित-पदाम्बुजम् ।।
यशोदोत्सङ्गललितं वन्दे श्रीनन्दनन्दनम् ।।२।।
भक्तिमार्ग-वितानाय योऽवतीर्णो हुताशनः ।।
सएव नः परं मानं शेषमस्य प्रमान्तरम् ।।३।।
वेदत्रयी-शिरोभाग-सूत्र-व्याख्यान-सम्मताम् ।।
भक्तिशास्त्रानुसारेण कुर्वे साधनदीपिकाम् ।।४।।
'आत्मा वार' इति श्रुत्या दर्शनैकफलो विधिः ।।
श्रवणाद्यैः प्रतिज्ञातः 'तं भजेत्' 'तं रसेदि'ति ।।५।।
'तस्माद् भारत सर्वात्मा भगवान् हरिरीश्वरः ।।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताभयम्' ।।६।।
पुरुषस्याविशेषेण संसारं प्रजिहासतः ।।
हरेराराधने मुक्तिः तत्प्रकारो निरूप्यते ।।७।।
'माहात्म्यज्ञानपूर्वोहि सुदृढः सर्वतोऽधिकः ।।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तः तया मुक्तिर्न चान्यथा' ।।८।।
माहात्म्यज्ञापनायैव श्रवणं गुणकर्मणाम् ।।
शास्त्राणामुपयोगोऽत्र तत्राकांक्षा गुरोर्भवेत् ।।९।।

'कृष्णसेवापरं वीक्ष्य दम्भादिरहितं नरम् ।।
श्रीभागवत-तत्त्वज्ञं भजेद् जिज्ञासुरादरात्' ।।१०।।
देहद्रोण्या यियासूनां परं पारं भवाम्बुधेः ।।
गुरुणा कर्णधारेण ह्युत्तार्या स्वोपदेशतः ।।११।।
'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये' ।।१२।।
'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' ।।
इति श्रुत्या तथा स्मृत्या प्रपत्त्यादेशमादितः ।।१३।।
प्रेम्णोपदेश-श्रवणात् प्रपत्तिः प्रेमकारणम् ।।
अतो मूलाभिषेको हि कार्यस्तेनास्य सेवने ।।१४।।
नहि देहभृता शक्यं कर्म त्यक्तुमशेषतः ।।
अतः स्वधर्माचरणं भारद्वैगुण्यमन्यथा ।।१५।।
स्वधर्माचरणं शक्त्या ह्यधर्मात्तु निवर्तनम् ।।
इन्द्रियाऽश्व-विनिग्राहः सर्वथा न त्यजेत् त्रयम् ।।१६।।
इति भागवतो धर्मः श्रीमदाचार्यसम्मतः ।।
भक्तिशास्त्रानुकूल्येन स्वधर्माचरणं भवेत् ।।१७।।
गर्भाधानादि-संस्कारैः द्विजैर्मौञ्ज्यन्त-सम्भवैः ।।
देहः संशोधनीयो हि हरिभावो न चान्यथा ।।१८।।
शौचाचार-विहीनस्य आसुरावेश-सम्भवात् ।।
ततः स्वाह्निक-धर्माणाम् आचारोऽपि प्रसज्यते ।।१९।।
स्नानं सन्ध्याजपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।।
वैश्वदेवकदेवार्चा इति षट्कर्मकृद् भवेत् ।।२०।।
यथा हि स्कन्ध-शाखानां तरोर्मूलाभिषेचनम् ।।
तथा सर्वार्हणं यस्मात् परिचर्याविधिर् हरेः ।।२१।।
अतस्तदनुरोधेन नित्य-कर्म-कृतिर्वरा ।।
अन्यथा तु कृतिर्व्यर्था त्रैवर्ग्यविषया यतः ।।२२।।

गर्भाधानादिसंस्कारैः स्वशाखोक्तैर्द्विजो युतः ।।
गुरुं प्रपद्येद् अन्यस्तु सदाचारोऽस्य संश्रयात् ।।२३।।
लब्ध्वानुग्रहमाचार्यात् श्रीकृष्णशरणं जनः ।।
धारयेत् तिलकं मालां वैष्णवाचारतत्परः ।।२४।।
सर्वस्वं हरिसात्कार्यं त्यजेत् सर्वम् अवैष्णवम् ।।
हिंस्रकाम्याऽन्यदेवार्चा यदि नित्यं च लौकिकम् ।।२५।।
पूर्वभाण्डादिकं सर्वं परित्यज्य विशुद्धितः ।।
श्रवणादिपरो नित्यं हरेः प्रेमास्पदो भवेत् ।।२६।।
हरेर्गुणानां श्रवणं ज्यायोभ्यः शृणुयात् सदा ।।
जातशिक्षः यवीयोभ्यः कीर्तयेद् अन्यथैकलः ।।२७।।
अतिसुन्दररूपाणि लीलाधामानि संस्मरेत् ।।
पादसेवा हरेः कार्या सर्वसम्पन्निकेतनैः ।।२८।।
अर्चनं प्रत्यहं तस्य विधिना नियमेन च ।।
वन्दनं चरणाम्भोजे तस्य भावनयाखिले ।।२९।।
दास्यं तदेकशरणं तत्प्रसादैकभोजनम् ।।
एवं सप्तविधा भक्तिः प्रपन्नाधिकृता भवेत् ।।३०।।
पूर्वविद्धं परित्याज्यं व्रतं तद्विष्णुपञ्चकम् ।।
जयन्ती तूदयेऽन्येन दुष्टान्याप्यरुणोदयात् ।।३१।।
वर्षाश्रितान्युत्सवानि स्वाश्रितान्यपि यान्युत ।।
तानि सर्वाणि हरये ह्यनुकूलानि चार्पयेत् ।।३२।।
श्राद्धानि चोत्तमान्येव वैश्वदेवं च दैवकम् ।।
हरेः प्रसादतः कुर्यात् ततस्तृप्तिरनुत्तमा ।।३३।।
प्रसादोऽपि बलिः कार्यः स्वात्मसंस्कारएव सः ।।
अन्नस्य चात्मनश्चापि तत्संस्कारेण तत्परः ।।३४।।
विप्रा गावो हरेर्भक्ताः सदा पूज्या हरेः प्रियाः ।।
गृहस्थस्यातिथिर्यस्मात् पूज्यो दीनो दयास्पदः ।।३५।।

जगन्नाथे द्वारिकायां श्रीरंगे व्रजमण्डले ।।
यत्र पूजाप्रवाह: स्यात् तत्र तिष्ठेच्च तत्पर: ।।३६।।
गंगादि-तीर्थ-वर्येषु यथा चित्तं न दुष्यति ।।
श्रवणाद्यै: भजेदेवं श्रीभागवत-तत्पर: ।।३७।।
ऊर्ध्वपुण्ड्राणि मृण्मुद्रा: तुलसीकाष्ठजापि स्रक् ।।
बाह्यांकान्यान्तराणि स्यु: भक्ते शान्तिविरक्तय: ।।३८।।
शमो दमस्तप: शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।।
दया दानं च विज्ञानं श्रद्धा दैवात्मसम्पद: ।।३९।।
दैवात्मसम्पद: पुंस: भक्तिर्भवति नैष्ठिकी ।।
यया 'सर्वात्मभावा'ख्या परा सिद्धि: स्वयं भवेत् ।।४०।।
सर्ववस्तुषु वैराग्यं दोषदृष्ट्या विभावयेत् ।।
दमनाद् इन्द्रियाणां च सन्तुष्ट्यापि च सिध्यति ।।४१।।
सर्वत्रैव विरक्तस्य राग: स्याद् नन्दनन्दने ।।
तेनासक्तिश्च व्यसनं प्रपञ्चास्फुरणं भवेत् ।।४२।।
एवं निरुद्धचित्तस्यानुगृहीतस्य चेशितु: ।।
लीलाप्रवेशोऽपीष्टश्च 'तस्मान्मच्छरणो'क्तित: ।।४३।।
न पापं स करोत्येव प्रमादे त्वाशु निष्कृति: ।।
अज्ञातस्खलितानां च हरिरेव परा गति: ।।४४।।
हरिर्भक्तापराधेषु दययैव प्रसीदति ।।
दोषेषु न गतिस्तस्माद् दोषान् सम्परिवर्जयेत् ।।४५।।
अशून्या दिवसा यामा: मुहूर्त-घटिका-लवा: ।।
भगवद्भजनै: कार्या: संसारासक्तिरन्यथा ।।४६।।
गुरुसेवा गुरोराज्ञा गुरौ श्रीहरिभावना ।।
गुरौ भयं गुरौ सिद्धि: प्रपन्न: परिभावयेत् ।।४७।।
भक्तवृन्दान् नमेद् अर्चेद् दृष्ट्वा हृष्येत् समानयेत् ।।
भक्तेष्वेवं हरिं साक्षात् प्रसादेन व्यवस्थितम् ।।४८।।

विना भक्तप्रसङ्गेन सद्‌गुरोः कृपया विना ।।
श्रीभागवतशास्त्रेण विना भक्तिः कथं भवेत् ।।४९।।
विना गद्‌गदकण्ठेन द्रवता चेतसा विना ।।
विना नृत्येन गानेन हरिप्रीतिः कथं भवेत्? ।।५०।।
'दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते '।।५१।।
क्रीडार्थमसृजत् पूर्वं स्वात्मना स्वात्मकं जगत् ।।
तत्र कायभवा पुष्टिः लीलासृष्टिरनुत्तमा ।।५२।।
वामांश-सम्भवानान्तु भजनानन्दलब्धये ।।
विसृष्टानां ततोऽन्येषां नान्या साधनपद्धतिः ।।५३।।
'यस्मायमनुगृह्णाति भगवानात्मभावितः ।।
स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम्' ।।५४।।
अनुग्रहे नियोज्योऽतः संग्रहः श्रुतिसम्मतः ।।
महतां समयो मानं महान्तोऽत्र हरेः प्रियाः ।।५५।।
अतस्तदनुरोधेन 'रतिरासो' यथा भवेत् ।।
तदर्थं वरणं कार्यं श्रीगोपालमहामनोः ।।५६।।
नायमात्मा प्रवचनैर्न धिया न बहुश्रुतैः ।।
लभ्यते वरणं हित्वा वृतं संवृणुते श्रुतेः ।।५७।।
स्मृत्वा स्वीयवियोगाग्निं तापदाहो भवाम्बुधौ ।।
ततः सर्वं समर्प्यैव श्रीगोपालमनुं श्रयेत् ।।५८।।
'इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृतं यच्चात्मनः प्रियम् ।।
दारान् सुतान् गृहान् प्राणान् यत्परस्मै निवेदनम्' ।।५९।।
'इति भागवतान् धर्मान् शिक्षन् भक्त्या तदुत्थया ।।
नारायणपरो मायाम् अञ्जस्तरति दुस्तराम्' ।।६०।।
एवं योगीश्वरोक्तेन भक्तिमार्गेण यो यजेत् ।।
सएवातीत्य कलिजान् दोषान् गच्छेत् परं पदम् ।।६१।।

नावैष्णवैः सह वसेन्न तैः संसर्गमाचरेत् ।।
प्रसङ्गेषु हरिं ध्यायेत् स्नायात् कर्मणि मन्त्रतः ।।६२।।
देहशुद्धिः सदा कार्या करशुद्धिर्विशेषतः ।।
स्वपात्रं भगवत्पात्रं स्नानपात्रं न मेलयेत् ।।६३।।
एवं वस्त्रेऽपि विज्ञेये शुद्ध्यशुद्धी स्ववैष्णवैः ।।
गोपयेत् स्वागमाचारं पाकसेवां हरेरपि ।।६४।।
सौवर्णैः राजतैस्ताम्रैः पात्रैर्व्यवहरेत् परैः ।।
पाके स्वीयान् सतीर्थ्यांश्च सवर्णान् संनियोजयेत् ।।६५।।
समर्प्यैव शुचिः पूर्वं हरयेऽन्यत्र योजयेत् ।।
द्विमुखं शुचि पात्रं तु ह्यंशुकं लोमजं शुचि ।।६६।।
कार्पासम् आहतं शुद्धं नवकौसुम्भयुक् शुचि ।।
विप्रैर्व्यवहृतं तीर्थम् आरामं च गृहं शुचि ।।६७।।
नान्यदेवं व्रजेद् नैव प्रसक्तौ ह्यपमानयेत् ।।
तीर्थेषु तीर्थदेवानां भूदेवानां समर्चनम् ।।६८।।
संन्यासश्चाग्निहोत्रं च कलौ नैव यथाविधि ।।
सन्दिग्धधर्मसेवापि क्लेशायैवाल्पमेधसाम् ।।६९।।
समर्थस्तु तयोः कुर्याद् विद्वान् स्मार्ताग्निधारणम् ।।
न्यासाश्रमात् पतन् मर्त्यः आरूढपतितोऽगतिः ।।७०।।
यद्यप्येवं हि गार्हस्थ्यं वर्णधर्मेण दुष्करम् ।।
तथाप्यायातपतितं तद् बिभृयाद् देहयात्रया ।।७१।।
न गार्हस्थ्यं विना देह-यात्रा-धर्मोऽपि सिध्यति ।।
अतस्तस्मिन् स्थितस्यैव यत्किञ्चित्सिद्धिसम्भवः ।।७२।।
आश्रमो द्विविधः कौर्मे तत्रोदासीनको गृही ।।
आद्येऽपि नैष्ठिकश्चान्त्ये वैष्णवोऽधिकृतस्ततः ।।७३।।
शूद्रस्तु हिंस्रकार्येण निषिद्धस्याशनेन च ।।
निवृत्यासौ भजेत् कृष्णं महद्भिरनुकम्पितः ।।७४।।

सहितं हरिभक्तानां ब्राह्मणानां चरेद् गवाम् ।।
पादसेवा च महतां यद्वृत्त्या तुष्यते हरिः ।।७५।।
दानं व्रतं पैतृकं च शौचं शान्तिमथाश्रयेत् ।।
हरिमेव भजेत् प्रेम्णा तेन सिध्यति सत्वरम् ।।७६।।
न वेदश्रवणं कार्यं स्पर्धासूयादिनान्यतः ।।
न्यग्भावेन प्रपन्नोऽसौ भवेद् दासो हरेर्गुरोः ।।७७।।
सधवा भर्तृभावेन विधवा पुत्रभावतः ।।
श्रीकृष्णं संश्रयेत् साध्वी जितचित्तेन्द्रिया शुचिः ।।७८।।
पति–पुत्रादि–बन्धूनाम् आनुकूल्येऽस्य सेवनम् ।।
तदभावे भजेद् भक्त्या कीर्तनैः श्रवणैः स्मृतैः ।।७९।।
तेषामेव तथात्वेतु परिचर्या समन्दिरात् ।।
हरेर्गुरोः सम्भवति ह्यस्वतन्त्राः स्त्रियो यतः ।।८०।।
स्वतन्त्रतायां दोषो हि स्त्रीणां सर्वत्र जायते ।।
अतस्तया तथा भूत्वा हरिः सेव्यस्तदिच्छया ।।८१।।
चित्रमात्रेऽपि सेवा स्यात् प्रतिबन्धे गुरोर्गिरा ।।
छलेनापि भजन् कृष्णं मुच्यते गोपिकादिवत् ।।८२।।
पुरुषापेक्षया स्त्रीणां हृदयं मृदु दृश्यते ।।
अतस्तदनुरागोऽत्र सद्य एवाभिषज्यते ।।८३।।
कामदोषो हि नारीणां कनकानां यथा रजः ।।
तज्जये विजितः कृष्णः कृष्णः स्त्रीणां प्रियो यतः ।।८४।।
उदकी च प्रसूता स्त्री अशुचिश्च तथा पुमान् ।।
दर्शनस्पर्शनादीनि सेव्यमूर्तेर्विवर्जयेत् ।।८५।।
चित्रमूर्तिरविज्ञानां पराधीनात्मनामपि ।।
शुचिश्लक्ष्णामपीच्यां च गुरुदत्तां भजेद् वरैः ।।८६।।
तीर्थतोयैर्निजैर्मन्त्रैः संस्कृतां सुमनोहराम्।।
लघ्वीमेव भजेद् मूर्तिं यथालब्धोपचारकैः ।।८७।।

नात्र प्राणप्रतिष्ठादि व्यापकत्वादजीवत: ।।
स्थान-शुद्ध्यर्थमेवैतत् शब्दार्थमपि सद्गुरो: ।।८८।।
अशुचिस्पर्शने तस्या: तथापञ्चामृतैरपि ।।
होमैर्दानेन संशोध्या वैदिकेन निजात्मवत् ।।८९।।
गुरुदत्तां स्वयं लब्धां भक्तैरपि सुपूजिताम् ।।
व्यङ्गाङ्गीमपि सेवेत यदि भावो न बाध्यते ।।९०।।
प्रातरारभ्य मध्याह्नावधि: चैवापराह्णके ।।
तत्तल्लीलानुभावेन भजेत् स्वगुरु-सम्मताम् ।।९१।।
वस्त्रैश्च भूषणैर्गन्धै: नैवेद्यैर्व्यञ्जनै: शुभै: ।।
देश-काल-विभूतीनाम् अनुसारेण सेवनम् ।।९२।।
प्रेम्णा परिचरेत् साधु: यावज्जीवं समाहित: ।।
तेनास्य भावनासिद्धि: यया स्यात् कृतकृत्यता ।।९३।।
प्रात: पाश्चात्ययामेऽसौ समुत्थाय शुचिर्धिया ।।
स्मरेद् भगवतो लीलां गायेत् तस्य गुणान् गिरा ।।९४।।
प्रात: कृत्यं तत: कार्यं बहिर्गत्वा यथोदितम् ।।
मुखशुद्धिस्ततो नित्यं सौगन्धाभ्यञ्जनं भवेत् ।।९५।।
मलस्नानं गृहे कार्यं तप्तोदकपरोदकै: ।।
तस्योपरि श्रीयमुनाजलै: स्नानं स्तवैश्च वा ।।९६।।
तीर्थस्थाने मलस्नानं कृत्वा तीरेऽभिमज्जनम् ।।
ततस्तु धारणं शुद्धकौशेयाम्बरयुग्मयो: ।।९७।।
पादुकाभिर्गृहे यानं स्पर्शनं नैव कस्यचित् ।।
कुंकुस्योर्ध्वपुण्ड्राणि द्वादशाङ्गेषु नामभि: ।।९८।।
शंख-चक्रादि-मुद्राश्च गोपी-चन्दन-मृत्स्नया ।।
चरणामृतपानं च लेपश्चापि विशुद्धये ।।९९।।
ततस्तु तुलसीमालां धृत्वा सन्ध्यां समाचरेत् ।।
परिचर्या हरे: कार्या परिवारजनै: सह ।।१००।।

गत्वा हरिपदं पद्भ्यां स्तुत्वा द्वारं प्रणम्य च ।।
प्रविश्य मार्जनैर्लेपैः पात्राणां शोधनं चरेत् ।।१०१।।
सम्भृत्य सर्वसम्भारं प्रातराशादिपूर्वकम् ।।
प्रबोध्य श्रीहरिं प्रेम्णा मुखशुध्यंशुकादिभिः ।।१०२।।
अलंकृत्य ततः सिंहासने समुपवेशयेत् ।।
हैयङ्गवीनपक्वान्नैः ताम्बूलैः सुजलैर्यजेत् ।।१०३।।
ततो नीराजनं कार्यं मङ्गलं गीतवाद्यकैः ।।
अभ्यङ्गोन्मर्दनैः स्नानं गृहस्नानविधानतः ।।१०४।।
स्तुत्वा कलिन्दजां स्नाते कुर्यात् सम्प्रोञ्छनांशुकम् ।।
शृङ्गारं रञ्जितैर्वस्त्रैः चित्रैराभरणैरपि ।।१०५।।
मायूरमुकुटै रम्यैः वेणुवेत्रैः सुमाल्यकैः ।।
वितानैः प्रसरैः शुभ्रैः प्रतिसारैर्नवैर्नवैः ।।१०६।।
जल-क्रीडोपस्करैश्च ताम्बूलामोद-दर्पणैः ।।
व्यजनैर्जल-भृङ्गारैः देशकालानुसारिभिः ।।१०७।।
अलंकृत्यैव सप्रेम स्वीयान् भक्तान् प्रदर्शयेत् ।।
तौर्यत्रिकेन तत्रापि धूप-दीपादिनार्तिकम् ।।१०८।।
ततो नानाविधैः शुद्धैश्चतुर्विध-सुभोजनैः ।।
सम्भृतं स्वर्णपात्रन्तु हरेरग्रे निवेदयेत् ।।१०९।।
तुलसीं शंख-तोयेन गायत्र्यास्मिन् निधाय च।।
'एतत् समर्पितं देव भक्त्या मे प्रतिगृह्यताम्'।।११०।।
राजभोगं समर्प्यैवं बहिर्गोग्रासमाचरेत् ।।
ततोऽवशिष्टं जाप्यादि माध्याह्निकमिहाचरेत् ।।१११।।
ततस्त्वाचमनं दत्वा ताम्बूलं माल्यजां स्रजम् ।।
अपसार्य विशोध्यात्र नैवेद्यं जलमानयेत् ।।११२।।
ततो राजविभूतीनाम् आदर्शैश्चामरैर्भजेत् ।।
गीताद्युत्सवतो ह्येनं नीराज्य च प्रणम्य च ।।११३।।

हृदि कृत्वा पिधायास्य मन्दिरं बहिराव्रजेत् ।।
स्रग्-गन्धादि शिरो धृत्वा प्रणम्यैव गृहं व्रजेत् ।।११४।।
माध्याह्निकं समाप्यैव श्रीमद्भागवतं पठेत् ।।
ततो भक्तजनेभ्योऽस्य प्रसादं शक्तितो भजेत् ।।११५।।
समागतेभ्यो विप्रेभ्यो दीनेभ्यश्च यथायथम् ।।
दत्वा स्वीय-जनैर् भुक्ति: वैश्वदेवोऽपि तत्र वै ।।११६।।
ततो वार्तां स्वकीयानां बहु-पापैरनाकुलाम् ।।
यात्रार्थमेव सेवेत नाभिवेशोऽत्र सञ्चरेत् ।।११७।।
सम्पन्न-वृत्तिर्भक्तानां शास्त्राणि परिभावयेत् ।।
सर्वथा वृत्त्यभावेतु याममात्रं भजेद् हरिम् ।।११८।।
दरिद्रश्च कुटुम्बार्त: विद्वान् भागवतं पठेत् ।।
अविद्वानस्य सेवायां साहाय्यं श्रवणं च वा ।।११९।।
सायंसन्ध्याथ पुण्ड्राणि धृत्वा ताम्बूलतो मुखम् ।।
संशोध्याचम्य शुद्धोऽसौ प्रभोरुत्थापनं चरेत् ।।१२०।।
कन्दमूलै: फलैर्गव्यै: सुमाल्यै: सुजलैरपि ।।
सन्तोष्य मुरजादीनां सङ्गीतेनापि तोषयेत् ।।१२१।।
गायेद् भक्तकृतै: पद्यै: हृद्यैर्लीलारहस्यकै: ।।
ततो नीराजयेन्नाथम् आयान्तं व्रजमण्डले ।।१२२।।
सायंकालेऽपि नैवेद्यं यथा-विभव-विस्तर: ।।
नीराजनं च शयनं यथायोग्यं विभावयेत् ।।१२३।।
सायंसन्ध्याऽऽहुती चापि कृत्वा भुक्त्वा निवेदितम् ।।
कथयेद् शृणुयाद् वापि लीलां भगवतोऽन्वहम् ।।१२४।।
तत: शयीत शुद्धोऽसौ भावयन् भगवत्पदम् ।।
सुतार्थिनी स्वपत्नी चेत् व्रजेत् तां जेतुमिन्द्रियम् ।।१२५।।
इत्येवं यस्य दिवसा यान्ति भक्तस्य भूतले ।।
सएव कृतकृत्योऽस्ति हरिस्तमनुश्लिष्यति ।।१२६।।

इत्येवं भक्तिशास्त्रेषु यदाचारो निरूपितः ।।
तदाचारं भजेदत्र नान्यथा गतिरिष्यते ।।१२७।।

।। इति श्रीमद्भगवद्-वदनावतार-श्रीवल्लभदीक्षित-तनुज-श्रीगोपीनाथ-दीक्षित-विरचिता साधनदीपिका समाप्ता ।।

श्रीविठ्ठलेशप्रभुचरण विरचिता

।। चतुःश्लोकी ।।

सदा सर्वात्मभावेन भजनीयो व्रजेश्वरः ।।
करिष्यति सएवास्मद् ऐहिकं पारलौकिकम् ।।१।।
अन्याश्रयो न कर्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः ।।
स्वकीयेष्वात्मभावश्च कर्तव्यः सर्वथा सदा ।।२।।
सदा सर्वात्मना कृष्णः सेव्यः कालादिदोषनुत् ।।
तद्भक्तेषु च निर्दोषभावेन स्थेयमादरात् ।।३।।
भगवत्येव सततं स्थापनीयं मनः स्वयम् ।।
कालोऽयं कठिनोऽपि श्रीकृष्णभक्तान्न बाधते ।।४।।

।। इति श्रीविठ्ठलेश्वरप्रभुचरणविरचिता चतुःश्लोकी समाप्ता ।।

।। श्रीपुरुषोत्तमनामसहस्त्रं स्तोत्रम् ।।

श्रीपुरुषोत्तमसहस्रनामस्तोत्र की रचना श्रीवल्लभाचार्यचरण ने अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीगोपीनाथजी के लिए की है. श्रीगोपीनाथजी ने छोटी वय में ही; समग्र श्रीमद्भागवत का पारायण करने के पश्चात् ही भोजन करने का नियम ले लिया था. श्रीमद्भागवत; बृहद् ग्रन्थ होने के कारण सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत पाठ में समय अधिक लगता. इस कारण आपश्री को भोजन में विलंब होता जिससे माताश्री को कष्ट होता एवं प्रतिदिन के व्यवहारों में तथा भगवत्सेवा में भी असुविधा होती. अतः पितृचरण श्रीमहाप्रभुजी ने सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत में से भगवान् के एक सहस्र नामों को प्रकट करके अपने आत्मज श्रीगोपीनाथजी को प्रदान किया.

इन सहस्र भगवन्नामों के पाठ से सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत में निरूपित प्रभु की समस्त लीलाओं का अनुसन्धान होता है. अत: श्रीपुरुषोत्तमसहस्रनामस्तोत्र का पाठ श्रीमद्भागवत के पाठ के समान ही फलदायी है.

पुराण-पुरुषो विष्णु: पुरुषोत्तम उच्यते ।।
नाम्नां सहस्रं वक्ष्यामि तस्य भागवतोद्धृतम् ।।१।।
यस्य प्रसादाद् वागीशा: प्रजेशा विभवोन्नता: ।।
क्षुद्राअपि भवन्त्याशु श्रीकृष्णं तं नतोऽस्म्यहम् ।।२।।
अनन्ताएव कृष्णस्य लीला नामप्रवर्तिका: ।।
उक्ता भागवते गूढा: प्रकटा अपि कुत्रचित् ।।३।।
अतस्तानि प्रवक्ष्यामि नामानि मुरवैरिण: ।।
सहस्रं यैस्तु पठितै: पठितं स्यात् शुकामृतम् ।।४।।
कृष्णनाम-सहस्रस्य ऋषिरग्निर्निरूपित: ।।
गायत्री च तथा छन्दो देवता पुरुषोत्तम: ।।५।।
विनियोग: समस्तेषु पुरुषार्थेषु वै मत: ।।
बीजं भक्तिप्रिय: शक्ति: सत्यवाग् उच्यते हरि: ।।६।।
भक्तोद्धरण-यत्नस्तु मन्त्रोऽत्र परमो मत: ।।
अवतारित-भक्तांश: कीलकं परिकीर्तितम् ।।७।।
अस्त्रं सर्वसमर्थश्च गोविन्द: कवचं मतम् ।।
पुरुषो ध्यानमत्रोक्त: सिद्धि: शरण संस्मृति: ।।८।।

प्रथमस्कन्धनामानि

अधिकारलीला

श्रीकृष्ण: सच्चिदानन्दो नित्यलीला-विनोदकृत् ।।
सर्वागम-विनोदी च लक्ष्मीश: पुरुषोत्तम: ।।९।।
आदिकाल: सर्वकाल: कालात्मा माययावृत: ।।
भक्तोद्धार-प्रयत्नात्मा जगत्कर्ता जगन्मय: ।।१०।।

नाम-लीला-परो विष्णु: व्यासात्मा शुकमोक्षद: ।।
व्यापि-वैकुण्ठ-दाता च श्रीमद्भागवतागम: ।।११।।
शुकवागमृताब्धीन्दु: शौनकाद्यखिलेष्टद: ।।
भक्ति-प्रवर्तकस्त्राता व्यास-चिन्ता-विनाशक: ।।१२।।
सर्वसिद्धान्त-वागात्मा नारदाद्यखिलेष्टद: ।।
अन्तरात्मा ध्यानगम्यो भक्ति-रत्न-प्रदायक: ।।१३।।
मुक्तोपसृप्य: पूर्णात्मा मुक्तानां रतिवर्धन: ।।
भक्त-कार्यैक-निरतो द्रौण्यस्त्र-विनिवारक: ।।१४।।
भक्त-स्मय-प्रणेता च भक्तवाक्-परिपालक: ।।
ब्रह्मण्य-देवो धर्मात्मा भक्तानां च परीक्षक: ।।१५।।
आसन्न-हित-कर्ता च माया-हित-कर: प्रभु: ।।
उत्तरा-प्राणदाता च ब्रह्मास्त्र-विनिवारक: ।।१६।।
सर्वत: पांडवपति: परीक्षिच्छुद्धि-कारणम् ।।
गूढात्मा सर्ववेदेषु भक्तैक-हृदयंगम: ।।१७।।
कुन्ती-स्तुत्य: प्रसन्नात्मा परमाद्भुत-कार्य-कृत् ।।
भीष्म-मुक्ति-प्रद: स्वामी भक्तमोह-निवारक: ।।१८।।
सर्वावस्थासु संसेव्य: सम: सुख-हित-प्रद: ।।
कृतकृत्य: सर्वसाक्षी भक्त-स्त्री-रति-वर्धन: ।।१९।।
सर्व-सौभाग्य-निलय: परमाश्चर्य-रूप-धृक् ।।
अनन्य-पुरुष-स्वामी द्वारका-भाग्य-भाजनम् ।।२०।।
बीज-संस्कार-कर्ता च परीक्षिज्ज्ञान-पोषक: ।।
सर्वत्र-पूर्ण-गुणक: सर्व-भूषण-भूषित: ।।२१।।
सर्व-लक्षण-दाता च धृतराष्ट्र-विमुक्तिद: ।।
सन्मार्ग-रक्षको नित्यं विदुर-प्रीति-पूरक: ।।२२।।
लीला-व्यामोह-कर्ता च काल-धर्म-प्रवर्तक: ।।

पाण्डवानां मोक्षदाता परीक्षिद्-भाग्य-वर्धन: ।।२३।।
कलि-निग्रह-कर्ता च धर्मादीनां च पोषक: ।।
सत्सङ्ग-ज्ञान-हेतुश्च श्रीभागवत-कारणम् ।।२४।।
प्राकृतादृष्टमार्गश्च ... ...

द्वितीयस्कन्धनामानि

ज्ञान(साधन)लीला

... ... श्रोतव्य: सकलागमै: ।।
कीर्तितव्य: शुद्धभावै: स्मर्तव्यश्चात्मवित्तमै: ।।२५।।
अनेक-मार्ग-कर्ता च नानाविध-गति-प्रद: ।।
पुरुष: सकलाधार: सत्त्वैक-निलयात्मभू: ।।२६।।
सर्वध्येयो योगगम्यो भक्त्या ग्राह्य: सुरप्रिय: ।।
जन्मादिसार्थककृति: लीलाकर्ता पति: सताम् ।।२७।।
आदि-कर्ता तत्त्व-कर्ता सर्व-कर्ता विशारद: ।।
नानावतार-कर्ता च ब्रह्माविर्भाव-कारणम् ।।२८।।
दश-लीला-विनोदी च नाना-सृष्टि-प्रर्वतक: ।।
अनेक-कल्प-कर्ता च सर्वदोष-विवर्जित: ।।२९।।

तृतीयस्कन्धनामानि

सर्गलीला

वैराग्यहेतु: तीर्थात्मा सर्व-तीर्थ-फल-प्रद:।।
तीर्थ-शुद्धैक-निलय: स्वमार्ग-परिपोषक: ।।३०।।
तीर्थ-कीर्ति: भक्त-गम्यो भक्तानुशय-कार्यकृत् ।।
भक्ततुल्य: सर्वतुल्य: स्वेच्छा-सर्व-प्रवर्तक: ।।३१।।
गुणातीतो-ऽनवद्यात्मा सर्गलीला-प्रवर्तक: ।।
साक्षात्-सर्वजगत्कर्ता महदादि-प्रर्वतक: ।।३२।।

माया-प्रवर्तक: साक्षी माया-रति-विवर्धन: ।।
आकाशात्मा चतुर्मूर्ति: चतुर्धा भूतभावन: ।।३३।।
रज:प्रवर्तको ब्रह्मा मरीच्यादि-पितामह: ।।
वेदकर्ता यज्ञकर्ता सर्वकर्ता-ऽमितात्मक: ।।३४।।
अनेक-सृष्टि-कर्ता च दशधा-सृष्टि-कारक: ।।
यज्ञांगो यज्ञ-वाराहो भू-धरो भूमि-पालक: ।।३५।।
सेतुर्विधरणो जैत्रो हिरण्याक्षान्तक: सुर: ।।
दिति-कश्यप-कामैक-हेतु-सृष्टि-प्रवर्तक: ।।३६।।
देवाभय-प्रदाता च वैकुंठाधिपतिर् महान् ।।
सर्व-गर्व-प्रहारी च सनकाद्यखिलार्थद: ।।३७।।
सर्वाश्वासन-कर्ता च भक्त-तुल्याहव-प्रद: ।।
काल-लक्षण-हेतुश्च सर्वार्थ-ज्ञापक: पर: ।।३८।।
भक्तोन्नति-कर: सर्व-प्रकार-सुख-दायक: ।।
नाना-युद्ध-प्रहरणो ब्रह्म-शाप-विमोचक: ।।३९।।
पुष्टि-सर्ग-प्रणेता च गुण-सृष्टि-प्रर्वतक: ।।
कर्दमेष्ट-प्रदाता च देवहूत्यखिलार्थद: ।।४०।।
शुक्ल-नारायण: सत्य-कालधर्म-प्रवर्तक: ।।
ज्ञानावतार: शान्तात्मा कपिल: काल-नाशक: ।।४१।।
त्रिगुणाधिपति: सांख्य-शास्त्र-कर्ता विशारद:।।
सर्ग-दूषण-हारी च पुष्टि-मोक्ष-प्रर्वतक: ।।४२।।
लौकिकानन्द-दाता च ब्रह्मानन्द-प्रवर्तक: ।।
भक्तिसिद्धान्तवक्ता च सगुण-ज्ञान-दीपक: ।।४३।।
आत्म-प्रद: पूर्ण-कामो योगात्मा योग-भावित: ।।
जीवन्मुक्तिप्रद: श्रीमान् अन्यभक्तिप्रवर्तक: ।।४४।।
काल-सामर्थ्य-दाता च काल-दोष-निवारक: ।।

गर्भोत्तम-ज्ञान-दाता कर्ममार्ग-नियामक: ।।४५।।
सर्वमार्ग-निराकर्ता भक्ति-मार्गैक-पोषक: ।।
सिद्धि-हेतु: सर्व-हेतु: सर्वाश्चर्यैक-कारणम् ।।४६।।
चेतनाचेतन-पति: समुद्र-परि-पूजित: ।।
सांख्याचार्यस्तुत: सिद्ध-पूजित: सर्व-पूजित: ।।४७।।

चतुर्थस्कन्धनामानि

विसर्गलीला

विसर्ग-कर्ता सर्वेश: कोटि-सूर्य-सम-प्रभ: ।।
अनन्त-गुण-गम्भीरो महापुरुष-पूजित: ।।४८।।
अनन्त-सुख-दाता च ब्रह्म-कोटि-प्रजापति: ।।
सुधाकोटिस्वास्थ्यहेतु: कामधुक् कोटिकामद: ।।४९।।
समुद्र-कोटि-गम्भीर: तीर्थ-कोटि-समाह्वय: ।।
सुमेरु-कोटि-निष्कम्प: कोटि-ब्रह्मांड-विग्रह: ।।५०।।
कोट्यश्वमेध-पापघ्नो वायु-कोटि-महाबल: ।।
कोटीन्दु-जगदानन्दी शिव-कोटि-प्रसादकृत् ।।५१।।
सर्व-सद्गुण-माहात्म्य: सर्व-सद्गुण-भाजनम् ।।
मन्वादि-प्रेरको धर्मो यज्ञनारायण: पर: ।।५२।।
आकूति-सूनु: देवेन्द्रो रुचि-जन्माऽभय-प्रद: ।।
दक्षिणा-पतिरोजस्वी क्रिया-शक्ति: परायण: ।।५३।।
दत्तात्रेयो योग-पति: योग-मार्ग-प्रवर्तक: ।।
अनसूया-गर्भ-रत्नम् ऋषि-वंश-विवर्धन: ।।५४।।
गुणत्रय-विभाग-ज्ञ: चतुर्वर्ग-विशारद: ।।
नारायणो धर्म-सूनु: मूर्ति-पुण्य-यशस्कर: ।।५५।।
सहस्र-कवचच्छेदी तप:-सारो नर-प्रिय: ।।
विश्वानन्द-प्रद: कर्म-साक्षी भारत-पूजित: ।।५६।।

अनन्ताद्भुत-माहात्म्यो बदरीस्थान-भूषणम् ।।
जितकामो जितक्रोधो जितसंगो जितेन्द्रिय: ।।५७।।
उर्वशी-प्रभव: स्वर्ग-सुखदायी स्थितिप्रद: ।।
अमानी मानदो गोप्ता भगवच्छास्त्र-बोधक: ।।५८।।
ब्रह्मादि-वन्द्यो हंस: श्री: माया-वैभव-कारणम् ।।
विविधानन्त-सर्गात्मा विश्व-पूरण-तत्पर: ।।५९।।
यज्ञ-जीवन-हेतुश्च यज्ञ-स्वामीष्ट-बोधक: ।।
नानासिद्धान्तगम्यश्च सप्ततन्तुश्च षड्गुण: ।।६०।।
प्रति-सर्ग-जगत्कर्ता नाना-लीला-विशारद: ।।
ध्रुवप्रियो ध्रुवस्वामी चिन्तिताधिक-दायक: ।।६१।।
दुर्लभानन्त-फलदो दया-निधिरमित्रहा ।।
अङ्गस्वामी कृपासारो वैन्यो भूमि-नियामक: ।।६२।।
भूमि-दोग्धा प्रजा-प्राण-पालनैक-परायण: ।।
यशो-दाता ज्ञान-दाता सर्व-धर्म-प्रदर्शक: ।।६३।।
पुरञ्जनो जगन्मित्रं विसर्गान्त-प्रदर्शक: ।।
प्रचेतसां पतिश्चित्र-भक्ति-हेतु: जनार्दन: ।।६४।।
स्मृति-हेतु-ब्रह्मभाव-सायुज्यादि-प्रद: शुभ: ।।
विजयी ... ...

पञ्चमस्कन्धनामानि

स्थानलीला

... स्थिति-लीलाब्धि: अच्युतो विजय-प्रद: ।।६५।।
स्व-सामर्थ्य-प्रदो भक्त-कीर्ति-हेतु: अधोक्षज: ।।
प्रियव्रत-प्रिय-स्वामी स्वेच्छावाद-विशारद: ।।६६।।
सङ्घगम्य: स्व-प्रकाश: सर्व-सङ्ग-विवर्जित: ।।
इच्छायां च समर्याद: त्याग-मात्रोपलम्भन: ।।६७।।

अचिन्त्य-कार्य-कर्ता च तर्कागोचर-कार्य-कृत् ।।
शृंगार-रस-मर्यादा आग्नीध्र-रस-भाजनम् ।।६८।।
नाभीष्ट-पूरक: कर्म-मर्यादा-दर्शनोत्सुक: ।।
सर्व-रूपो-ऽद्भुत-तमो मर्यादा-पुरुषोत्तम: ।।६९।।
सर्वरूपेषु सत्यात्मा कालसाक्षी शशिप्रभ: ।।
मेरुदेवी-व्रत-फलम् ऋषभो भगलक्षण: ।।७०।।
जगत्-सन्तर्पको मेघ-रूपी देवेन्द्र-दर्पहा ।।
जयन्ती-पतिरत्यन्त-प्रमाणाशेष-लौकिक: ।।७१।।
शतधा-न्यस्त-भूतात्मा शतानन्दो गुणप्रसू: ।।
वैष्णवोत्पादनपर: सर्व-धर्मोपदेशक: ।।७२।।
पर-हंस-क्रिया-गोप्ता योग-चर्या-प्रदर्शक: ।।
चतुर्थाश्रम-निर्णेता सदानन्द-शरीरवान् ।।७३।।
प्रदर्शितान्य-धर्मश्च भरत-स्वाम्यपार-कृत् ।।
यथावत्-कर्म-कर्ता च सङ्गानिष्ट-प्रदर्शक: ।।७४।।
आवश्यक-पुनर्जन्म-कर्म-मार्ग-प्रदर्शक: ।।
यज्ञ-रूप-मृग: शान्त: सहिष्णु: सत्पराक्रम: ।।७५।।
रहूगण-गति-ज्ञश्च रहूगण-विमोचक: ।।
भवाटवी-तत्त्व-वक्ता बहिर्मुख-हिते रत: ।।७६।।
गयस्वामी स्थान-वंश-कर्ता स्थान-विभेदकृत् ।।
पुरुषावयवो भूमि-विशेष-विनिरूपक: ।।७७।।
जम्बू-द्वीप-पति: मेरु-नाभि-पद्मरुहाश्रय: ।।
नानाविभूतिलीलाढ्यो गङ्गोत्पत्ति-निदानकृत् ।।७८।।
गङ्गामाहात्म्य-हेतुश्च गङ्गा-रूपो-ऽति-गूढ-कृत् ।।
वैकुण्ठ-देह-हेत्वम्बु-जन्मकृत् सर्व-पावन: ।।७९।।
शिवस्वामी शिवोपास्यो गूढ संकर्षणात्मक: ।।

स्थानरक्षार्थ-मत्स्यादि-रूप: सर्वैक-पूजित: ।।८०।।
उपास्य-नाना-रूपात्मा ज्योतिरूपो गतिप्रद: ।।
सूर्यनारायणो वेद-कान्तिरुज्ज्वल-वेष-धृक् ।।८१।।
हंसोऽन्तरिक्ष-गमन: सर्व-प्रसव-कारणम् ।।
आनन्द-कर्ता वसुदो बुधो वाक्पतिरुज्ज्वल: ।।८२।।
कालात्मा काल-कालश्च कालच्छेदकृदुत्तम: ।।
शिशुमार: सर्वमूर्ति: आधिदैविक-रूप-धृक् ।।८३।।
अनन्त-सुख-भोगाढ्यो विवरैश्वर्य-भाजनम् ।।
संकर्षणो दैत्यपति: सर्वाधारो बृहद्-वपु: ।।८४।।
अनन्त-नरकच्छेदी स्मृति-मात्रार्ति-नाशन: ।।
सर्वानुग्रह-कर्ता च ... ...

षष्ठस्कन्धनामानि

पोषणलीला

... ... मर्यादा-भिन्न-शास्त्रकृत् ।।८५।।
कालान्तक-भयच्छेदी नाम-सामर्थ्य-रूप-धृक् ।।
उद्धारानर्ह-गोप्तात्मा नामादि-प्रेरकोत्तम: ।।८६।।
अजामिल-महादुष्ट-मोचको-ऽघ-विमोचक: ।।
धर्मवक्ता-ऽक्लिष्टवक्ता विष्णुधर्मस्वरूपधृक् ।।८७।।
सन्मार्ग-प्रेरको धर्ता त्यागहेतु: अधोक्षज: ।।
वैकुण्ठ-पुर-नेता च दास-संवृद्धि-कारक: ।।८८।।
दक्ष-प्रसाद-कृद्-हंस-गुह्य-स्तुति-विभावन: ।।
स्वाभिप्राय-प्रवक्ता च मुक्तजीव-प्रसूतिकृत् ।।८९।।
नारद-प्रेरणात्मा च हर्यश्व-ब्रह्म-भावन:।।
सुबलाश्व-हितो गूढ-वाक्यार्थ-ज्ञापन-क्षम: ।।९०।।
गूढार्थ-ज्ञापन: सर्व-मोक्षानन्द-प्रतिष्ठित: ।।

पुष्टि-प्ररोह-हेतुश्च दासैक-ज्ञात-हृद्गतः ।।९१।।
शान्तिकर्ता सुहितकृत् स्त्रीप्रसूः सर्वकामधृक् ।।
पुष्टि-वंश-प्रणेता च विश्वरूपेष्ट-देवता ।।९२।।
कवचात्मा पालनात्मा च (?) वर्मोपचिति-कारणम् ।।
विश्वरूप-शिरच्छेदी त्वाष्ट्र-यज्ञ-विनाशकः ।।९३।।
वृत्र-स्वामी वृत्र-गम्यो वृत्र-व्रत-परायणः ।।
वृत्र-कीर्तिः वृत्र-मोक्षो मघवत्-प्राण-रक्षकः ।।९४।।
अश्वमेध-हविर्-भोक्ता देवेन्द्रामीव-नाशकः ।।
संसार-मोचकश्चित्र-केतु-बोधन-तत्परः ।।९५।।
मन्त्रसिद्धिः सिद्धिहेतुः सुसिद्धि-फल-दायकः ।।
महादेव-तिरस्कर्ता भक्त्यै पूर्वार्थ-नाशकः ।।९६।।
देव-ब्राह्मण-विद्वेष-वैमुख्य-ज्ञापकः शिवः ।।
आदित्यो दैत्य-राजश्च महत्पतिरचिन्त्यकृत् ।।९७।।
मरुतां भेदकस्त्राता व्रतात्मा पुम्प्रसूतिकृत् ।।

सप्तमस्कन्धनामानि

ऊतिलीला

कर्मात्मा वासनात्मा च ऊति-लीला-परायणः ।।९८।।
सम-दैत्यसुरः स्वात्मा वैषम्य-ज्ञान-संश्रयः ।।
देहाद्युपाधि-रहितः सर्वज्ञः सर्व-हेतु-विद् ।।९९।।
ब्रह्मवाक्-स्थापनपरः स्व-जन्मावधि-कार्यकृत् ।।
सदसद्-वासनाहेतुः त्रिसत्यो भक्तमोचकः ।।१००।।
हिरण्यकशिपु-द्वेषी प्रविष्टात्माति-भीषणः ।।
शान्तिज्ञानादि-हेतुश्च प्रह्लादोत्पत्तिकारणम् ।।१०१।।
दैत्य-सिद्धान्त-सद्-वक्ता तपः-सार उदार-धीः ।।
दैत्य-हेतु-प्रकटनो भक्तिचिह्न-प्रकाशकः ।।१०२।।

सद्वेष-हेतु: सद्वेष-वासनात्मा निरन्तर: ।।
नैष्ठुर्य-सीमा प्रह्लाद-वत्सल: संग-दोष-हा ।।१०३।।
महानुभाव: साकार: सर्वाकार: प्रमाण-भू: ।।
स्तम्भप्रसूतिर्-नृहरि: नृसिंहो भीम-विक्रम: ।।१०४।।
विकटास्यो ललज्जिह्वो नख-शस्त्रो जवोत्कट: ।।
हिरण्यकशिपुच्छेदी क्रूर-दैत्य-निवारक: ।।१०५।।
सिंहासनस्थ: क्रोधात्मा लक्ष्मी-भय-विवर्धन: ।।
ब्रह्माद्यत्यन्त-भयभू: अपूर्वाचिन्त्य-रूपधृक् ।।१०६।।
भक्तैक-शान्त-हृदयो भक्त-स्तुत्य: स्तुति-प्रिय: ।।
भक्ताङ्गलेहनोद्भूत-क्रोधपुञ्ज: प्रशान्तधी: ।।१०७।।
स्मृति-मात्र-भय-त्राता ब्रह्म-बुद्धि-प्रदायक: ।।
गोरूप-धार्यमृत-पा: शिव-कीर्ति-विवर्धन: ।।१०८।।
धर्मात्मा सर्वकर्मात्मा विशेषात्मा-श्रम-प्रभु: ।।
संसारमग्नस्वोद्धर्ता सन्मार्गाखिल-तत्त्ववाक् ।।१०९।।
आचारात्मा सदाचार: ... ...

अष्टमस्कन्धनामानि

मन्वन्तरलीला

... ... मन्वन्तर-विभावन: ।।
स्मृत्याऽशेषाशुभहरो गजेन्द्र-स्मृति-कारणम् ।।११०।
जाति-स्मरण-हेत्वैक-पूजा-भक्ति-स्वरूप-द: ।।
यज्ञो भयान् मनुत्राता विभु: ब्रह्म-व्रताश्रय: ।।१११।।
सत्यसेनो दुष्ट-घाती हरिर्गज-विमोचक: ।।
वैकुण्ठो लोककर्ता च अजितोऽमृत-कारणम् ।।११२।।
उरुक्रमो भूमि-हर्ता सार्वभौमो बलि-प्रिय: ।।
विभु: सर्वहितैकात्मा विष्वक्सेन: शिवप्रिय: ।।११३।।

धर्म-सेतुः लोक-धृतिः सुधामान्तर-पालकः ।।
उपहर्ता-योगपतिः बृहद्भानुः क्रिया-पतिः ।।११४।।
चतुर्दश-प्रमाणात्मा धर्मो मन्वादि-बोधकः ।।
लक्ष्मी-भोगैक-निलयः देव-मन्त्रप्रदायकः ।।११५।।
दैत्य-व्यामोहकः साक्षाद्-गरुड-स्कन्ध-संश्रयः ।।
लीला-मन्दर-धारी च दैत्य-वासुकिपूजितः ।।११६।।
समुद्रोन्मन्थनायत्तः विघ्न-कर्ता स्ववाक्य-कृत् ।।
आदि-कूर्मः पवित्रात्मा मन्दरा-घर्षणोत्सुकः ।।११७।।
श्वासैजदब्धिर्वा-वीचिः कल्पान्तावधि-कार्यकृत् ।।
चतुर्दश-महा-रत्नो लक्ष्मी-सौभाग्यवर्धनः ।।११८।।
धन्वन्तरिः सुधा-हस्तो यज्ञ-भोक्तार्ति-नाशनः ।।
आयुर्वेद-प्रणेता च देव दैत्याखिलार्चितः ।।११९।।
बुद्धि-व्यामोहको देव-कार्य-साधन-तत्परः ।।
स्त्रीरूपो मायया वक्ता दैत्यान्तःकरणप्रियः ।।१२०।।
पायितामृत-देवांशो युद्ध-हेतु-स्मृति-प्रदः ।।
सुमालिमालिवधकृत् माल्यवत्-प्राणहारकः ।।१२१।।
कालनेमि-शिरच्छेदी दैत्य-यज्ञ-विनाशकः ।।
इन्द्र-सामर्थ्य-दाता च दैत्यशेषस्थितिप्रियः ।।१२२।।
शिव-व्यामोहको मायी भृगु-मन्त्र-स्वशक्तिदः ।।
बलि-जीवन-कर्ता च स्वर्गहेतुः व्रतार्चितः ।।१२३।।
आदित्यानन्द-कर्ता च कश्यपादिति-सम्भवः ।।
उपेन्द्र इन्द्रावरजो वामन-ब्रह्मरूप-धृक् ।।१२४।।
ब्रह्मादि-सेवित-वपुः यज्ञ-पावन-तत्परः ।।
याञ्चोपदेश-कर्ता च ज्ञापिताशेष-संस्थितिः ।।१२५।।
सत्यार्थ-प्रेरकः सर्व-हर्ता गर्व-विनाशकः ।।

त्रिविक्रम: त्रिलोकात्मा विश्वमूर्ति: पृथुश्रवा: ।।१२६।।
पाश-बद्ध-बलि: सर्व-दैत्य-पक्षोपमर्दक: ।।
सुतलस्थापित-बलि: स्वर्गाधिक-सुखप्रद: ।।१२७।।
कर्म-सम्पूर्ति-कर्ता च स्वर्ग-संस्थापितामर: ।।
ज्ञातत्रिविध-धर्मात्मा महामीनोऽब्धिसंश्रय: ।।१२८।।
सत्यव्रत-प्रियो गोप्ता मत्स्य-मूर्ति-धृत-श्रुति: ।।
शृंगबद्ध-धृत-क्षोणि: सर्वार्थ-ज्ञापको गुरु: ।।१२९।।

नवमस्कन्धनामानि

ईशानुकथालीला

ईश-सेवक-लीलात्मा सूर्य-वंश-प्रवर्तक: ।।
सोम-वंशोद्भव-कर: मनु-पुत्र-गति-प्रद: ।।१३०।।
अम्बरीष-प्रिय: साधु: दुर्वासा-गर्व-नाशक: ।।
ब्रह्म-शापोपसंहर्ता भक्त-कीर्ति-विवर्धन: ।।१३१।।
इक्ष्वाकु-वंश-जनक: सगराद्यखिलार्थद: ।।
भगीरथ-महायत्नो गङ्गाधौताङ्घ्रि-पंकज: ।।१३२।।
ब्रह्म-स्वामी शिव-स्वामी सगरात्मज-मुक्ति-द: ।।
खट्वाङ्ग-मोक्ष-हेतुश्च रघुवंश-विवर्धन: ।।१३३।।
रघुनाथो रामचन्द्रो रामभद्रो रघुप्रिय: ।।
अनन्तकीर्ति: पुण्यात्मा पुण्यश्लोकैकभास्कर: ।।१३४।।
कोशलेन्द्र: प्रमाणात्मा सेव्यो दशरथात्मज: ।।
लक्ष्मणो भरतश्चैव शत्रुघ्नो व्यूहविग्रह: ।।१३५।।
विश्वामित्र-प्रियो दान्त: ताडका-वध-मोक्ष-द: ।।
वायव्यास्त्राब्धिनिक्षिप्त-मारीचश्च सुबाहुहा ।।१३६।।
वृषध्वज-धनुर्भङ्ग-प्राप्त-सीता-महोत्सव: ।।
सीतापति: भृगुपति-गर्व-पर्वत-नाशक: ।।१३७।।

अयोध्यास्थ-महाभोग-युक्त-लक्ष्मी-विनोदवान् ।।
कैकेयीवाक्यकर्ता च पितृवाक्-परिपालक: ।।१३८।।
वैराग्य-बोधको-ऽनन्य-सात्त्विक-स्थान-बोधक: ।।
अहल्या-दु:ख-हारी च गुहस्वामी सलक्ष्मण: ।।१३९।।
चित्रकुट-प्रिय-स्थानो दण्डकारण्य-पावन: ।।
शरभङ्गसुतीक्ष्णादिपूजितोऽगस्त्य-भाग्यभू: ।।१४०।।
ऋषि-सम्प्रार्थित-कृति: विराध-वध-पंडित: ।।
छिन्न-शूर्पणखा-नास: खर-दूषण-घातक: ।।१४१।।
एक-बाण-हताऽनेक-सहस्र-बल-राक्षस:।।
मारीच-घाती नियतसीता-सम्बन्धशोभित: ।।१४२।।
सीता-वियोग-नाट्यश्च जटायुर्वध-मोक्षद: ।।
शबरी-पूजितो भक्त-हनुमत्-प्रमुखावृत: ।।१४३।।
दुन्दुभ्यस्थि-प्रहरण: सप्त-ताल-विभेदन: ।।
सुग्रीवराज्यदो वाली-घाती सागर-शोषण: ।।१४४।।
सेतु-बन्धन-कर्ता च विभीषण-हित-प्रद: ।।
रावणादि-शिरच्छेदी राक्षसाघौघ-नाशक: ।।१४५।।
सीता-ऽभय-प्रदाता च पुष्पकागमनोत्सुक: ।।
अयोध्यापतिरत्यन्त-सर्वलोक-सुख-प्रद: ।।१४६।।
मथुरा-पुर-निर्माता सुकृतज्ञ-स्वरू पद: ।।
जनक-ज्ञानगम्यश्य ऐलान्त-प्रकट-श्रुति: ।।१४७।।
हैहयान्त-करो राम: दुष्ट-क्षत्र-विनाशक: ।।
सोम-वंश-हितैकात्मा यदु-वंश-विवर्धन: ।।१४८।।

दशमस्कन्धपूर्वार्धनामानि

निरोधलीला

परब्रह्मावतरण: केशव: क्लेश-नाशन: ।।

भूमि-भारावतरणो भक्तार्थाऽखिल-मानस: ।।१४९।।
सर्व-भक्त-निरोधात्मा लीला-ऽनन्त-निरोधकृत् ।।
भूमिष्ठ-परमानन्दो देवकी-शुद्धि-कारणम् ।।१५०।।
वसुदेव-ज्ञान-निष्ठ-सम-जीव-निवारक: ।।
सर्व-वैराग्यकरण-स्व-लीलाधार-शोधक: ।।१५१।।
माया-ज्ञापन-कर्ता च शेष-सम्भार-सम्भृति: ।।
भक्त-क्लेशपरिज्ञाता तन्निवारण-तत्पर: ।।१५२।।
आविष्ट-वसुदेवांश: देवकी-गर्भ-भूषणम् ।।
पूर्ण-तेजो-मय: पूर्ण: कंसाधृष्य-प्रतापवान् ।।१५३।।
विवेक-ज्ञान-दाता च ब्रह्माद्यखिल-संस्तुत: ।।
सत्यो जगत्कल्पतरु: नाना-रूप-विमोहन: ।।१५४।।
भक्ति-मार्ग-प्रतिष्ठाता विद्वन्-मोह-प्रवर्तक: ।।
मूल-काल-गुण-द्रष्टा नयनानन्द-भाजनम् ।।१५५।।
वसुदेव-सुखाब्धिश्च देवकी-नयनामृतम् ।।
पितृ-मातृ-स्तुत: पूर्व-सर्ववृत्तान्त-बोधक: ।।१५६।।
गोकुलागति-लीलाप्त-वसुदेव-कर-स्थिति: ।।
सर्वेशत्व-प्रकटन: माया-व्यत्यय-कारक: ।।१५७।।
ज्ञान-मोहित-दुष्टेश: प्रपञ्चास्मृति-कारणम् ।।
यशोदानन्दनो नन्द-भाग्यभू-गोकुलोत्सव: ।।१५८।।
नन्द-प्रियो नन्द-सूनु: यशोदाया: स्तनन्धय: ।।
पूतना-सुपय:पाता मुग्ध-भावाति-सुन्दर: ।।१५९।।
सुन्दरी-हृदयानन्दो गोपी-मन्त्राभिमन्त्रित: ।।
गोपालाश्चर्यरसकृत् शकटासुर-खंडन: ।।१६०।।
नन्द-व्रज-जनानन्दी नन्द-भाग्य-महोदय: ।।
तृणावर्त-वधोत्साहो यशोदा-ज्ञान-विग्रह: ।।१६१।।

बलभद्र-प्रिय: कृष्ण: संकर्षण-सहायवान् ।।
रामानुजो वासुदेव: गोष्ठाङ्गण-गति-प्रिय: ।।१६२।।
किंकिणी-रव-भाव-ज्ञो वत्स-पुच्छावलम्बन: ।।
नवनीत-प्रियो गोपी-मोह-संसार-नाशक: ।।१६३।।
गोप-बालक-भाव-ज्ञ: चौर्य-विद्या-विशारद: ।।
मृत्स्नाभक्षणलीलास्य-माहात्म्यज्ञानदायक: ।।१६४।।
धरा-द्रोण-प्रीति-कर्ता दधि-भाण्ड-विभेदन: ।।
दामोदरो भक्त-वश्यो यमलार्जुन-भञ्जन: ।।१६५।।
बृहद्वन-महाश्चर्य: वृन्दावन-गति-प्रिय: ।।
वत्स-घाती बाल-केलि: बकासुर-निषूदन: ।।१६६।।
अरण्य-भोक्ताप्यथवा बाल-लीला-परायण: ।।
प्रोत्साहन-जनकश्चैवम् अघासुर-निषूदन: ।।१६७।।
व्याल-मोक्ष-प्रद: पुष्टो ब्रह्म-मोह-प्रवर्धन: ।।
अनन्तमूर्ति: सर्वात्मा जङ्गम-स्थावराकृति: ।।१६८।।
ब्रह्म-मोहन-कर्ता च स्तुत्य आत्मा सदा-प्रिय: ।।
पौगण्ड-लीलाभिरति: गोचारण-परायण: ।।१६९।।
वृन्दावन-लता-गुल्म-वृक्ष-रूप-निरूपक: ।।
नाद-ब्रह्म-प्रकटनो वय:-प्रतिकृति-स्वन: ।।१७०।।
बर्हि-नृत्यानुकरणो गोपालानुकृति-स्वन: ।।
सदाचार-प्रतिष्ठाता बलश्रम-निराकृति: ।।१७१।।
तरु-मूल-कृता-ऽशेष-तल्प-शायी सखि-स्तुत: ।।
गोपाल-सेवित-पद: श्रीलालित-पदाम्बुज: ।।१७२।।
गोप-सम्प्रार्थित-फल-दान-नाशित-धेनुक: ।।
कालीयफणिमाणिक्यरञ्जित-श्रीपदाम्बुज: ।।१७३।।
दृष्टि-सञ्जीविताशेष-गोप-गो-गोपिकाप्रिय: ।।

लीलासम्पीतदावाग्निः प्रलम्बवध-पण्डितः ॥१७४॥
दावाग्न्यावृत-गोपाल-दृष्ट्याच्छादन-वह्निपः ॥
वर्षा-शरद्-विभूतिश्रीः गोपीकामप्रबोधकः ॥१७५॥
गोपी-रत्न-स्तुताऽशेष-वेणुवाद्य-विशारदः ॥
कात्यायनीव्रतव्याज-सर्व-भावाश्रिताङ्गनः ॥१७६॥
सत्सङ्गति-स्तुति-व्याज-स्तुत-वृन्दावनाङ्घ्रिपः ॥
गोपक्षुच्छान्तिसंव्याज-विप्रभार्याप्रसादकृत् ॥१७७॥
हेतु-प्राप्तेन्द्र-यागस्व-कार्य-गोसव-बोधकः ॥
शैल-रूप-कृताऽशेष-रस-भोग-सुखावहः ॥१७८॥
लीला-गोवर्धनोद्धार-पालित-स्व-व्रजप्रियः ॥
गोपस्वच्छन्दलीलार्थ-गर्गवाक्यार्थ-बोधकः ॥१७९॥
इन्द्र-धेनु-स्तुति-प्राप्त-गोविन्देन्द्राभिधानवान् ॥
व्रतादिधर्मसंसक्त-नन्द-क्लेश-विनाशकः ॥१८०॥
नन्दादि-गोप-मात्रेष्ट-वैकुण्ठ-गति-दायकः ॥
वेणुवाद-स्मरक्षोभ-मत्त-गोपी-विमुक्तिदः ॥१८१॥
सर्व-भाव-प्राप्त-गोपी-सुख-संवर्धन-क्षमः ॥
गोपीगर्व-प्रणाशार्थ-तिरोधान-सुख-प्रदः ॥१८२॥
कृष्ण-भाव-व्याप्त-विश्व-गोपी-भावित-वेषधृक् ॥
राधाविशेष-सम्भोग-प्राप्त-दोष-निवारकः ॥१८३॥
परम-प्रीति-सङ्गीत-सर्वाद्भुत-महागुणः ॥
मानापनोदनाक्रन्द-गोपी-दृष्टि-महोत्सवः ॥१८४॥
गोपिका-व्याप्त-सर्वाङ्गः स्त्री-सम्भाषा-विशारदः ॥
रासोत्सवमहासौख्य-गोपीसम्भोग-सागरः ॥१८५॥
जल-स्थल-रति-व्याप्त-गोपी-दृष्ट्यभिपूजितः ॥
शास्त्रानपेक्ष-कामैक-मुक्तिद्वार-विवर्धनः ॥१८६॥

सुदर्शन-महासर्प-ग्रस्त-नन्द-विमोचकः ।।
गीतमोहित-गोपीधृक्-शङ्खचूडविनाशकः ।।१८७।।
गुण-सङ्गीत-सन्तुष्टि गोपी-संसार-विस्मृतिः ।।
अरिष्ट-मथनो दैत्य-बुद्धि-व्यामोह-कारकः ।।१८८।।
केशी-घाती नारदेष्टः व्योमासुर-विनाशकः ।।
अक्रूरभक्ति-संराद्ध-पाद-रेणु-महानिधिः ।।१८९।।
रथावरोह-शुद्धात्मा गोपी-मानस-हारकः ।।
ह्रदसन्दर्शिता-ऽशेष-वैकुण्ठाक्रूर-संस्तुतः ।।१९०।।
मथुरा-गमनोत्साहः मथुरा-भाग्य-भाजनम् ।।
मथुरा-नगरी-शोभा-दर्शनोत्सुक-मानसः ।।१९१।।
दुष्ट-रञ्जक-घाती च वायकार्चित-विग्रहः ।।
वस्त्रमालासुशोभाङ्गः कुब्जा-लेपन-भूषितः ।।१९२।।
कुब्जा-सुरूप-कर्ता च कुब्जा-रति-वर-प्रदः ।।
प्रसादरूप-सन्तुष्ट-हर-कोदण्ड-खण्डनः ।।१९३।।
शकलाहत-कंसाप्त-धनू-रक्षक-सैनिकः ।।
जाग्रत्स्वप्न-भयव्याप्त-मृत्युलक्षणबोधकः ।।१९४।।
मथुरा-मल्ल ओजस्वी मल्ल-युद्ध-विशारदः ।।
सद्यः कुवलयापीड-घाती चाणूर-मर्दनः ।।१९५।।
लीला-हत-महामल्लः शल-तोशल-घातकः ।।
कंसान्तको जितामित्रो वसुदेव-विमोचकः ।।१९६।।
ज्ञात-तत्त्व-पितृज्ञान-मोहनामृत-वाङ्मयः ।।
उग्रसेन-प्रतिष्ठाता यादवाधि-विनाशकः ।।१९७।।
नन्दादि-सान्त्वन-करः ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः ।।
गुरु-शुश्रूषण-परः विद्या-पारमितेश्वरः ।।१९८।।
सान्दीपनिमृतापत्य-दाता कालान्तकादिजित् ।।

गोकुलाश्वासन-परः यशोदा-नन्द-पोषकः ॥१९९॥
गोपिका-विरह-व्याज-मनो-गति-रति-प्रदः ॥
समोद्धव-भ्रमरवाक् गोपिका-मोह-नाशकः ॥२००॥
कुब्जा-रति-प्रदोऽक्रूर-पवित्रीकृत-भू-गृहः ॥
पृथा-दुःख-प्रणेता च पाण्डवानां सुखप्रदः ॥२०१॥

दशमस्कन्धोत्तरार्धनामानि

निरोधलीला

जरासन्ध-समानीत-सैन्य-घाती विचारकः ॥
यवनव्याप्त-मथुरा-जन-दत्त-कुशस्थलिः ॥२०२॥
द्वारकाद्भुत-निर्माण-विस्मापित-सुरासुरः ॥
मनुष्य-मात्र-भोगार्थ-भूम्यानीतेन्द्र-वैभवः ॥२०३॥
यवन-व्याप्त-मथुरा-निर्गमानन्द-विग्रहः ॥
मुचुकुन्द-महाबोध-यवन-प्राण-दर्प-हा ॥२०४॥
मुचुकुन्द-स्तुताशेष-गुण-कर्म-महोदयः ॥
फलप्रदान-सन्तुष्टिः जन्मान्तरित-मोक्ष-दः ॥२०५॥
शिव-ब्राह्मण-वाक्याप्त-जय-भीतिविभावनः ॥
प्रवर्षण-प्रार्थिताग्नि-दान-पुण्य-महोत्सवः ॥२०६॥
रुक्मिणी-रमणः काम-पिता प्रद्युम्न-भावनः ॥
स्यमन्तकमणिव्याज-प्राप्तजाम्बवतीपतिः ॥२०७॥
सत्यभामा-प्राणपतिः कालिन्दी-रति-वर्धनः ॥
मित्रविन्दा-पतिः सत्या-पतिः वृष-निषूदनः ॥२०८॥
भद्रा-वाञ्छित-भर्ता च लक्ष्मणा-वरण-क्षमः ॥
इन्द्रादि-प्रार्थित-वध-नरकासुर-सूदनः ॥२०९॥
मुरारिः पीठ-हन्ता च ताम्रादि-प्राण-हारकः ॥
षोडशस्त्री-सहस्रेशः छत्र-कुण्डल-दानकृत् ॥२१०॥

पारिजातापहरण: देवेन्द्र-मद-नाशक: ।।
रुक्मिणीसम-सर्वस्त्री-साध्यभोग-रतिप्रद: ।।२११।।
रुक्मिणी-परिहासोक्ति-वाक्तिरोधान-कारक: ।।
पुत्र-पौत्र-महाभाग्य-गृह-धर्म-प्रवर्तक: ।।२१२।।
शम्बरान्तक-सत्पुत्र-विवाह-हत-रुक्मिक: ।।
उषापहृत-पौत्र-श्री: बाण-बाहु-निवारक: ।।२१३।।
शीत-ज्वर-भय-व्याप्त-वर-संस्तुत-षड्गुण: ।।
शंकर-प्रति-योद्धा च द्वन्द्व-युद्ध-विशारद: ।।२१४।।
नृग-पाप-प्रभेत्ता च ब्रह्मस्व-गुण-दोष-दृक् ।।
विष्णुभक्तिविरोधैक-ब्रह्मस्व-विनिवारक: ।।२१५।।
बल-भद्राहित-गुण: गोकुल-प्रीति-दायक: ।।
गोपीस्नेहैकनिलय: गोपी-प्राण-स्थितिप्रद: ।।२१६।।
वाक्यातिगामि-यमुना-हलाकर्षण-वैभव: ।।
पौण्ड्रकत्याजितस्पर्ध: काशीराज-विभेदन: ।।२१७।।
काशी-निदाह-करण: शिव-भस्म-प्रदायक: ।।
द्विविद-प्राण-घाती च कौरवाखर्व-गर्व-नुत् ।।२१८।।
लाङ्गलाकृष्ट-नगरी-संविग्नाऽखिल-नागर: ।।
प्रपन्नाभयद: साम्ब-प्राप्तसन्मानभाजनम् ।।२१९।।
नारदाविष्ट-चरण: भक्त-विक्षेप-नाशक: ।।
सदाचारैक-निलय: सुधर्माध्यासितासन: ।।२२०।।
जरासन्धावरुद्धेन विज्ञापित-निजक्लम: ।।
मन्त्र्युद्धवादिवाक्योक्त-प्रकारैक-परायण: ।।२२१।।
राजसूयादि-मख-कृत् सम्प्रार्थित-सहायकृत् ।।
इन्द्रप्रस्थ-प्रयाणार्थ-महत्सम्भार-सम्भृति: ।।२२२।।
जरासन्ध-वध-व्याज-मोचिताऽशेष-भूमिप: ।।

सन्मार्गबोधको-यज्ञ-क्षिति-वारण-तत्पर: ।।२२३।।
शिशुपाल-हतिव्याज-जय-शाप-विमोचक: ।।
दुर्योधनाभिमानाब्धि-शोष-बाण-वृकोदर: ।।२२४।।
महादेव-वर-प्राप्त-पुर-शाल्व-विनाशक: ।।
दन्तवक्त्रवध-व्याज-विजयाघौघ-नाशक: ।।२२५।।
विदूरथ-प्राण-हर्ता न्यस्त-शस्त्रास्त्र-विग्रह: ।।
उपधर्म-विलिप्ताङ्ग-सूत-घाती वर-प्रद: ।।२२६।।
बल्वल-प्राण-हरण-पालितर्षि-श्रुति-क्रिय: ।।
सर्वतीर्थाघनाशार्थ-तीर्थ-यात्रा-विशारद: ।।२२७।।
ज्ञान-क्रिया-विभेदेष्ट-फल-साधन-तत्पर: ।।
सारथ्यादिक्रियाकर्ता भक्तवश्यत्व-बोधक: ।।२२८।।
सुदामा(म?)रंक-भार्यार्थ-भूम्यानीतेन्द्र-वैभव: ।।
रविग्रह-निमित्ताप्त-कुरुक्षेत्रैक-पावन: ।।२२९।।
नृप-गोपी-समस्त-स्त्री-पावनार्थाखिलक्रिय: ।।
ऋषिमार्ग-प्रतिष्ठाता वसुदेव-मखक्रिय: ।।२३०।।
वसुदेव-ज्ञान-दाता देवकी-पुत्र-दायक: ।।
अर्जुन-स्त्री-प्रदाता च बहुलाश्व-स्वरूपद: ।।२३१।।
श्रुतदेवेष्ट-दाता च सर्व-श्रुति-निरूपित: ।।
महादेवाद्यति-श्रेष्ठो भक्ति-लक्षण-निर्णय: ।।२३२।।
वृक-ग्रस्त-शिव-त्राता नाना-वाक्य-विशारद: ।।
नर-गर्व-विनाशार्थ-हृत-ब्राह्मण-बालक: ।।२३३।।
लोकालोक-परस्थान-स्थित-बालक-दायक: ।।
द्वारकास्थ-महाभोग-नानास्त्री-रतिवर्धन: ।।२३४।।
मनस्तिरोधान-कृत-व्यग्र-स्त्री-चित्त-भावित: ।।

एकादशस्कन्धनामानि

मुक्तिलीला

मुक्तिलीलाविहरण: मौशल-व्याज-संहृति: ।।२३५।।
श्रीभागवत-धर्मादि-बोधको भक्ति-नीतिकृत् ।।
उद्धव-ज्ञान-दाता च पञ्चविंशतिधा गुरु: ।।२३६।।
आचारभक्ति-मुक्त्यादि-वक्ता शब्दोद्भव-स्थिति: ।।
हंसो धर्म-प्रवक्ता च सनकाद्युपदेशकृत् ।।२३७।।
भक्ति-साधन-वक्ता च योग-सिद्धि-प्रदायक: ।।
नाना-विभूति-वक्ता च शुद्ध-धर्मावबोधक: ।।२३८।।
मार्गत्रय-विभेदात्मा नाना-शंका-निवारक: ।।
भिक्षुगीताप्रवक्ता च शुद्ध-सांख्य-प्रवर्तक: ।।२३९।।
मनो-गुण-विशेषात्मा ज्ञापकोक्त-पुरूरवा: ।।
पूजाविधि-प्रवक्ता च सर्वसिद्धान्त-बोधक: ।।२४०।।
लघु-स्वमार्ग-वक्ता च स्वस्थान-गति-बोधक: ।।
यादवाङ्गोपसंहर्ता सर्वाश्चर्य-गति-क्रिय: ।।२४१।।

द्वादशस्कन्धनामानि

आश्रयलीला

काल-धर्म-विभेदार्थ-वर्ण-नाशन-तत्पर: ।।
बुद्धो गुप्तार्थ-वक्ता च नानाशास्त्रविधायक: ।।२४२।।
नष्ट-धर्म-मनुष्यादि-लक्षण-ज्ञापनोत्सुक: ।।
आश्रयैकगतिज्ञाता कल्कि: कलि-मलापह: ।।२४३।।
शास्त्र-वैराग्य-सम्बोध: नाना-प्रलय-बोधक: ।।
विशेषत: शुकव्याज-परीक्षिज्ज्ञान-बोधक: ।।२४४।।
शुकेष्ट-गति-रूपात्मा परीक्षिद्-देह-मोक्ष-द: ।।
शब्दरूपो नादरूपो वेदरूपो विभेदन: ।।२४५।।

व्यास: शाखा-प्रवक्ता च पुराणार्थ-प्रवर्तक: ।।
मार्कण्डेय-प्रसन्नात्मा वट-पत्र-पुटे-शय: ।।२४६।।
माया-व्याप्त-महामोह-दु:ख-शान्तिप्रवर्तक:।।
महादेव-स्वरूपश्च भक्तिदाता कृपानिधि: ।।२४७।।
आदित्यान्तर्गत: काल: द्वादशात्मा सुपूजित: ।।
श्रीभागवत-रूपश्च सर्वार्थ-फल-दायक: ।।२४८।।

इतीदं कीर्तनीयस्य हरेर्नाम-सहस्रकम् ।।
पञ्चसप्तति-विस्तीर्णं पुराणान्तर-भाषितम् ।।२४९।।
य एतत् प्रातरुत्थाय श्रद्धावान् सुसमाहित: ।।
जपेदर्थाहितमति: स गोविन्दपदं लभेत् ।।२५०।।
सर्वधर्म-विनिर्मुक्त: सर्वसाधन-वर्जित: ।।
एतद्धारण-मात्रेण कृष्णस्य पदवीं व्रजेत् ।।२५१।।
हर्यावेशित-चित्तेन श्रीभागवत-सागरात् ।।
समुद्धृतानि नामानि चिन्तामणिनिभानि हि ।।२५२।।
कण्ठस्थितान्यर्थदीप्त्या बाधन्ते-ऽज्ञानजं तम: ।।
भक्तिं श्रीकृष्ण-देवस्य साधयन्ति विनिश्चितम् ।।२५३।।
किम्बहूक्तेन भगवान् नामभि: स्तुत-षड्गुण: ।।
आत्मभावं नयत्याशु भक्तिं च कुरुते दृढाम् ।।२५४।।
य: कृष्णभक्तिमिह वाञ्छति साधनौघै: ।
नामानि भासुरयशांसि जपेत् स नित्यम् ।।
तं वै हरि: स्व - पुरुषं कुरुतेति - शीघ्रम् ।
आत्मार्पणं समधिगच्छति भावतुष्टः ।।२५५।।

श्रीकृष्ण! कृष्णसख! वृष्णि-वृषावनिधृक्-
राजन्यवंश दहनानपवर्ग-वीर्य ।

गोविन्द! गोप-वनिता-व्रज-भृत्यगीत!
तीर्थश्रव: श्रवणमङ्गल पाहि भृत्यान् ।।२५६।।

।।इति श्रीभागवतसारसमुच्चये वैश्वानरोक्तं श्रीपुरुषोत्तमसहस्रनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।।

।। त्रिविधनामावली ।।

श्रीवल्लभाचार्यचरण ने श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध की भगवल्लीलाओं के तात्पर्य रूप भगवन्नामों को त्रिविधनामावली के रूप में संकलित किया है. श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध में प्रभु की (१) बाललीला (२) प्रौढलीला (३) राजलीला; इन त्रिविध लीलाओं का निरूपण हुआ है. भगवद्भक्ति भी तीन अवस्थाओं में विकसित होती है (१) प्रेम (२) आसक्ति एवं (३) व्यसन. अत: इन त्रिविध लीलाओं के पठन - मनन से भक्ति का क्रमिक तीन सोपानों पर आरोहण होता है. परिणामत: भक्त का भगवान् में निरोध सिद्ध होता है.

नामावलीं प्रवक्ष्यामि केशवस्यातिवल्लभाम् ।।
यस्या: संकीर्तनाद् विष्णु: आत्मानं सम्प्रयच्छति ।।१।।

श्रीकृष्णाय नम: ।।१।।
नराकृतये नम: ।।२।।
परब्रह्मणे नम: ।।३।।
यदु-कुल-चूडामणये नम: ।।४।।
वसुदेव-नन्दनाय नम: ।।५।।
भूमि-क्लेश-भार-हाराय नम: ।।६।।
पुण्य-श्रवण-कीर्तनाय नम: ।।७।।
कलिमल-संहति-कलन-यश:पुञ्जाय नम: ।।८।।
भक्ति-मार्ग-प्रवर्तकाय नम: ।।९।।
भक्त-जन-कल्प-वृक्षाय नम: ।।१०।।
देवकी-नन्दनाय नम: ।।११।।

वसुदेव-देवकी-पुण्य-पुञ्ज-फलाय नम: ।।१२।।
देवकी-मन:-प्रमोद-जनकाय नम: ।।१३।।
ब्रह्मादि-भक्त-वाक्य-परिपालकाय नम: ।।१४।।
शेषादि-भक्त-सेवित-चरणाय नम: ।।१५।।
कालिन्दी-वेग-हर्त्रे नम: ।।१६।।
योग-मायाधिपतये नम: ।।१७।।
गोकुलपतये नम: ।।१८।।
गोपीजन-वल्लभाय नम: ।।१९।।
गोकुलोत्सवाय नम: ।।२०।।
अखिलाशा-पूरकाय नम: ।।२१।।
यशोदा-स्तनन्धयाय नम: ।।२२।।
नन्द-मनो-मोदकाय नम: ।।२३।।
पूतनान्तकाय नम: ।।२४।।
सुकृतज्ञाय नम: ।।२५।।
पूतनामोक्षदात्रे नम: ।।२६।।
भक्त-मनो-रोधकाय नम: ।।२७।।
गोकुलाभयदान-चरित्राय नम: ।।२८।।
भक्त-प्रपञ्च-विस्मारकाय नम: ।।२९।।
शकट-भेदन-बाल-चरित्राय नम: ।।३०।।
तृणावर्त-विमर्दकाय नम: ।।३१।।
भक्ति-स्वासक्ति-जनकाय नम: ।।३२।।
यशोदा-मोह-नाशकाय नम: ।।३३।।
रामानुजाय नम: ।।३४।।
कृष्णाय नम: ।।३५।।
वासुदेवाय नम: ।।३६।।

अनन्त-गुण-गम्भीराय नम: ।।३७।।
अद्भुत-कर्मणे नम: ।।३८।।
गोकुल-चिन्तामणये नम: ।।३९।।
गोप-गोकुल-नन्दनाय नम: ।।४०।।
भक्त-सर्व-दु:ख-निवारकाय नम: ।।४१।।
महानुभावाय नम: ।।४२।।
अचिन्त्य-गुण-कर्मणे नम: ।।४३।।
नारायणाय नम: ।।४४।।
व्रजाङ्गण-रिङ्गण-जानु-चरणारविन्दाय नम: ।।४५।।
व्रज-पंकाङ्ग-लेपनाय नम: ।।४६।।
भक्त-परीक्षा-परिपालकाय नम: ।।४७।।
व्रज-हीर-मणये नम: ।।४८।।
गोकुल-धूर्त-चरित्राय नम: ।।४९।।
भक्त-वशीकरण-चरित्राय नम: ।।५०।।
नवनीत-लवाहाराय नम: ।।५१।।
दधि-दुग्ध-प्रियाय नम: ।।५२।।
क्षीर-कणावलीढ-मुखारविन्दाय नम: ।।५३।।
मृत्स्ना-भक्षण-भीत-यशोदा-ताडन-सन्त्रास-
नयनारविन्दाय नम: ।।५४।।
सर्वविमोहकाय नम: ।।५५।।
माहात्म्य-प्रदर्शकाय नम: ।।५६।।
परब्रह्मत्व-बोधकाय नम: ।।५७।।
सर्वजनीन-माहात्म्याय नम: ।।५८।।
दधि-भाण्ड-भेत्त्रे नम: ।।५९।।
चौर्य-विशंकितेक्षणाय नम: ।।६०।।

भक्ताधीनाय नमः ।।६१।।
दामोदराय नमः ।।६२।।
यमलार्जुन–भञ्जनाय नमः ।।
भक्त–वाक्य–परिपूरकाय नमः ।।६४।।
भक्तिदात्रे नमः ।।६५।।
सर्वेश्वराय नमः ।।६६।।
सर्वाय नमः ।।६७।।
नन्द–विमोचित–बन्धनाय नमः ।।६८।।
उपनन्दप्रियाय नमः ।।६९।।
मातृरुत्सङ्ग–गताय नमः ।।७०।।
वृन्दावन–क्रीडा–रताय नमः ।।७१।।
वत्स–वाट–चराय नमः ।।७२।।
वत्सासुर–हन्त्रे नमः ।।७३।।
बक–विदारणाय नमः ।।७४।।
वृन्दावन–चारिणे नमः ।।७५।।
धेनुकासुर–खण्डनाय नमः ।।७६।।
उत्ताल–ताल–भेत्त्रे नमः ।।७७।।
सर्व–प्राणि–सुख–सञ्चार–कर्त्रे नमः ।।७८।।
गोकुल–सुख–वासाय नमः ।।७९।।
गोरजःच्छुरित–कुन्तलाय नमः ।।८०।।
वेणुवाद–विशारदाय नमः ।।८१।।
वन–कुसुमावली–रचिताकल्पाय नमः ।।८२।।
अनुग–गीयमान–यशःपुञ्जाय नमः ।।८३।।
गोपी–ताप–हारकाय नमः ।।८४।।
गोपी–नयनारविन्दार्चिताय नमः ।।८५।।

लौकिक–लीला–प्रदर्शकाय नमः ।।८६।।
विषमूर्च्छित–गो–गोपाल–जीवन–दृष्टये नमः ।।८७।।
भक्त–परीक्षकाय नमः ।।८८।।
कालिय–फणि–माणिक्य–रञ्जित–श्रीपदाम्बुजाय नमः ।।८९।।
नागपत्नी–समर्चिताय नमः ।।९०।।
भक्ताश्रय–जल–स्थल–विशोधकाय नमः ।।९१।।
नानाविध–क्रीडा–रताय नमः ।।९२।।
प्रलम्ब–घातकाय नमः ।।९३।।
दावाग्नि–पतित–गोकुल–रक्षकाय नमः ।।९४।।
अग्निमुखाय नमः ।।९५।।
सर्वर्तु–क्रीडा–विलासाय नमः ।।९६।।
गोकुल–चारु–विचित्र–चरित्राय नमः ।।९७।।
गोपिका–धैर्य–विमोचक–वेणुनादाय नमः ।।९८।।
गोपिका–नयन–पानैक–पात्राय नमः ।।९९।।
श्रुतिरूप–गोपिका–वर्णित–निखिल–गुणाय नमः ।।१००।।
गोपकन्या–व्रत–फलाय नमः ।।१०१।।
जलक्रीडा–समासक्त–गोपी–वस्त्रापहारकाय नमः ।।१०२।।
मुक्तोपसर्पकाय नमः ।।१०३।।
वृन्दावन–बोधकाय नमः ।।१०४।।
यज्ञभोक्त्रे नमः ।।१०५।।
यज्ञ–भाग–भुजे नमः ।।१०६।।
धर्म–रक्षकाय नमः ।।१०७।।
यज्ञपत्नी–प्रसादकाय नमः ।।१०८।।
सर्वाज्ञान–निवारकाय नमः ।।१०९।।

इति बाल–चरित्रस्य नाम्नाम् अष्टोत्तरं शतम् ।।

कृष्णभक्तिहृदानन्दि कीर्तनाद् भक्तिबोधकम् ।।१।।

।। इति बाललीला नामावली ।।

।। अथ प्रौढलीलानामानि ।।

नामान्यथ प्रवक्ष्यामि यैः सन्तुष्यति केशवः ।।
वक्ष्यामि भक्त-हृदये परमानन्द-दायकः ।।१।।

अद्भुत-बालकाय नमः ।।१।।
अम्बुजेक्षणाय नमः ।।२।।
चतुर्भुजात्त-चक्रासि-गदा-शंखाद्युदायुधाय नमः ।।३।।
श्रीवत्स-लक्ष्मणे नमः ।।४।।
कौस्तुभाभरण-ग्रीवाय नमः ।।५।।
पीताम्बर-धारिणे नमः ।।६।।
नील-मेघ-श्यामाय नमः ।।७।।
नाना-कल्प-विराजिताय नमः ।।८।।
आत्म-विस्मापक-मानुष-वेष-सौन्दर्य-निधये नमः ।।९।।
रमा-लालित-पाद-पद्माय नमः ।।१०।।
भक्त-हितोपदेशकाय नमः ।।११।।
हविर्मन्त्र-देवता-मूल-बोधकाय नमः ।।१२।।
कृत-वेष-मोहित-देव-परीक्षकाय नमः ।।१३।।
एक-देश-वृष्टि-वायुदेवता-क्षोभ-जनकाय नमः ।।१४।।
सर्वरूपाय नमः ।।१५।।
वेदमार्ग-रक्षकाय नमः ।।१६।।
भक्तिमार्ग-प्रवर्तकाय नमः ।।१७।।
गोवर्धनोद्धरण-धीराय नमः ।।१८।।
सर्वजनीन-माहात्म्य-बोधकाय नमः ।।१९।।

भक्त–विस्मापकाय नम: ।।२०।।
मोहन–प्रबोधोभय–रक्षकाद्भुत–चरित्राय नम: ।।२१।।
लोक–वेदोल्लङ्घनकर–प्रपन्नभक्त–
सर्वदु:ख–निवारकाय नम:।।२२।।
इन्द्र–सुरभी–प्रसादकाय नम: ।।२३।।
गोविन्दाय नम: ।।२४।।
अत्यन्त–भक्त–निरोधकाय नम: ।।२५।।
वरुणादि–देव–प्रबोधकाय नम: ।।२६।।
व्यापि–वैकुण्ठ–प्रदर्शकाय नम: ।।२७।।
वैकुण्ठ–स्थित्यधिक–भक्त–गृहस्थिति–बोधकाय नम: ।।२८।।
मदन–गोपालाय नम: ।।२९।।
अनादि–ब्रह्मचारिणे नम: ।।३०।।
कन्दर्प–कोटि–लावण्याय नम: ।।३१।।
सर्वोपनिषत्–तात्पर्य–गोचराय नम: ।।३२।।
गोपिका–रमणाय नम: ।।३३।।
सकल–योगाधिपतये नम: ।।३४।।
अलौकिक–पूर्ण–काम–जनकाय नम: ।।३५।।
आशा–पूरक–सत्यात्मकाम–दीपकाय नम: ।।३६।।
शृङ्गार–विभावादि–युक्ताय नम: ।।३७।।
सत्यवाचे नम: ।।३८।।
कामोन्मत्त–गोपाङ्गना–मुक्ति–दात्रे नम: ।।३९।।
मुक्त्यधिक–फल–गोपी–मनो–मोहकाय नम: ।।४०।।
लोकवेद–सर्वधर्म–परित्यक्त–गोपी–सेवित–
चरणारविन्दाय नम: ।।४१।।
भक्त–प्रतिबन्ध–निवारकाय नम: ।।४२।।

अलब्ध-रास-गोपी-सद्योमुक्ति-प्रदायकाय नमः ।।४३।।
परीक्षित-गोपवधू-सेवित-चरणाय नमः ।।४४।।
निजजन-स्मय-ध्वंसन-स्मिताय नमः ।।४५।।
कायिक-तिरोभावित-गोपी-पुञ्जाय नमः ।।४६।।
राधा-सहचराय नमः ।।४७।।
विरह-व्याकुल-गोपाङ्गनान्वेषित-मार्गाय नमः ।।४८।।
ज्ञान-तुल्य-भक्त-भ्रान्ति-जनकाय नमः ।।४९।।
निकट-स्थिति-बोधकाय नमः ।।५०।।
गोपी-वर्णित-निखिल-गुणाय नमः ।।५१।।
भक्त-शुद्धि-विलम्बनाय नमः ।।५२।।
दीन-कृपा-प्रकटित-रूपाय नमः ।।५३।।
सर्व-मनो-नयनाह्लादकाय नमः ।।५४।।
गोपिका-वाक्य-विचारकाय नमः ।।५५।।
सर्वधर्म-निर्धारकाय नमः ।।५६।।
सर्वरसाभिज्ञाय नमः ।।५७।।
रास-मण्डलाऽनेक-रूपाय नमः ।।५८।।
उद्दीप्त-कामरस-पूरकाय नमः ।।५९।।
अतिक्रान्त-मर्यादाय नमः ।।६०।।
भक्तदैन्य-निवारकाय नमः ।।६१।।
यमुना-कीर्ति-जनकाय नमः ।।६२।।
सुदर्शन-मोचकाय नमः ।।६३।।
बलदेवाभीष्ट-दात्रे नमः ।।६४।।
शंखचूड-घातकाय नमः ।।६५।।
गोपी-क्लेश-नाशक-गुणार्णवाय नमः ।।६६।।
स्व-समान-गुणाय नमः ।।६७।।
सर्व-वशीकरण-द्वादशविध-चरित्राय नमः ।।६८।।

वृषभासुर–विध्वंसिने नम: ।।६९।।
नारदादि–बोधिताक्लिष्ट–कर्मणे नम: ।।७०।।
दुष्ट–दुर्बुद्धि–नाश–हेतवे नम: ।।७१।।
शिष्ट–ज्ञान–दीपकाय नम: ।।७२।।
केश्यादि–महादुष्ट–निबर्हणाय नम: ।।७३।।
नारदादि–वन्दित–चरणाय नम: ।।७४।।
व्योमादि–दुष्ट–पीडित–गोप–गोपी–रक्षकाय नम: ।।७५।।
सद्–भक्ति–हेतवे नम: ।।७६।।
अक्रूरादि–भक्त–मनोरथ–परिपूरकाय नम: ।।७७।।
नन्दादि–गोप–मथुरा–गमनोत्सव–हेतवे नम: ।।७८।।
भक्तदु:ख–मूलोच्छेदकाय नम: ।।७९।।
गोपिका–मन:–कार्पण्य–शील–हेतवे नम: ।।८०।।
गोपिका–विरह–नाशक–वाक्य–पुञ्जाय नम: ।।८१।।
भक्त–संशयच्छेदकाय नम: ।।८२।।
व्यापिवैकुण्ठ–वासिने नम: ।।८३।।
अक्रूरादि–भक्तस्तुतानन्त–गुणाय नम: ।।८४।।
सत्यप्रतिज्ञाय नम: ।।८५।।
स्वगुण–प्रतिबोधकाय नम: ।।८६।।
मथुरा–दर्शनोत्सुकाय नम: ।।८७।।
स्वाधार–वैकुण्ठ–स्थापकाय नम: ।।८८।।
पौर–पुरन्ध्री–पुण्य–जनकाय नम: ।।८९।।
रजकादि–दुष्ट–नाशकाय नम: ।।९०।।
वस्त्राद्यनेकाकल्प–भूषित–रूपाय नम: ।।९१।।
वायक–सुदाम–भक्तालंकृताय नम: ।।९२।।
अत्युदाराय नम: ।।९३।।
कुब्जानुलेपालंकृताय नम: ।।९४।।

कुब्जादि–भक्त–सहज–दोष–दूरीकरणाय नमः ।।९५।।
स्वलीलौपयिक–रूपाभिव्यञ्जकाय नमः ।।९६।।
मथुरा–महोत्सवाय नमः ।।९७।।
दैत्यधर्म–निवारकाय नमः ।।९८।।
धनुर्भङ्ग–बोधित–कालाय नमः ।।९९।।
अतिसामर्थ्य–बोधिताक्लिष्ट–कर्म–चरित्राय नमः ।।१००।।
मृत्युधर्म–बोधकाय नमः ।।१०१।।
कुवलयापीड–घातकाय नमः ।।१०२।।
गजदन्त–वरायुधाय नमः ।।१०३।।
निखिलजन–मनो–नयनाह्लादकाय नमः ।।१०४।।
सर्वरसाविर्भावकाय नमः ।।१०५।।
निखिल–कामिनी–प्रेमावलोकिताय नमः ।।१०६।।
चाणूरादि–महामल्ल–दैत्य–गर्व–निबर्हणाय नमः ।।१०७।।
कंस–घातकाय नमः ।।१०८।।
वसुदेव–देवकी–दुःख–विदारकाय नमः ।।१०९।।
यदुकुल–नलिनी–विकाशकाय नमः ।।११०।।
कालदुःख–निवारकाय नमः ।।१११।।
प्रदर्शित–सदाचाराय नमः ।।११२।।
सान्दीपनि–मृतापत्य–दात्रे नमः ।।११३।।
नन्दादि–ज्ञान–बोधकाय नमः ।।११४।।
यशोदा–स्नेह–रक्षकाय नमः ।।११५।।
गोपिकादि–लौकिक–भावदोष–दूरीकरणाय नमः ।।११६।।
उद्धवादि–मध्यमभाव–बोधकाय नमः ।।११७।।
स्वनिष्ठ–मनो–दोष–नाशकाय नमः ।।११८।।
कुब्जादि–मनोरथ–पूरकाय नमः ।।११९।।

अक्रूरादि-भक्त-सन्मान-हेतवे नमः ।।१२०।।
भक्त-हित-चिन्तकाय नमः ।।१२१।।
पाण्डव-स्थापकाय नमः ।।१२२।।
कुन्ती-प्रीति-हेतवे नमः ।।१२३।।
प्रौढ-लीलावबोधकाय नमः ।।१२४।।
भक्तपक्ष-बोधकाय नमः ।।१२५।।
धृतराष्ट्र-ज्ञान-बोधकाय नमः ।।१२६।।
इच्छा-वाद-स्थापकाय नमः ।।१२७।।
माया-प्रवर्तकाय नमः ।।१२८।।
सर्वाभिवन्दित-चरणारविन्दाय नमः ।।१२९।।

एवं श्रीकृष्णनामानि प्रौढलीलावबोधने ।।
कीर्तितान्यतिपुण्यानि शतं विंशतिरष्ट च ।।१।।

।। इति प्रौढलीला नामानि ।।

।। अथ राजलीलानामानि ।।

अतः परं प्रवक्ष्यामि राजलीलामुपाश्रितः ।।
कृतवान् यानि कर्माणि तानि नामानि मुक्तये ।।१।।

क्षात्र-धर्म-प्रवर्तकाय नमः ।।१।।
दिव्य-युद्ध-विशारदाय नमः ।।२।।
जरासन्ध-समानीत-सैन्य-घातकाय नमः ।।३।।
द्वारका-पुर-निर्माण-हेतवे नमः ।।४।।
भक्ताचिन्त्य-सुख-दात्रे नमः ।।५।।
यवनान्तकाय नमः ।।६।।
मुचुकुन्द-प्रसादकाय नमः ।।७।।
सर्वदेवता-मनोरथ-पूरकाय नमः ।।८।।

शिव–ब्राह्मण–वाक्य–परिपालकाय नमः ।।९।।
दैत्य–मोहन–चरित्राय नमः ।।१०।।
रुक्मिणी–मनोरथ–पूरकाय नमः ।।११।।
रुक्मिणी–गान्धर्व–विवाहाय नमः ।।१२।।
रुक्मिणी–प्राणपतये नमः ।।१३।।
रुक्मि–प्रभृति–दुष्ट–मानस–दुःखदाय नमः ।।१४।।
रुक्मिणी–विवाह–प्रदर्शित–गृहस्थ–धर्माय नमः ।।१५।।
त्रिविध–विवाह–कर्त्रे नमः ।।१६।।
काम–जनकाय नमः ।।१७।।
शम्बर–घातक–प्रद्युम्नाय नमः ।।१८।।
जाम्बवती–प्राणपतये नमः ।।१९।।
लोक–निर्मित–सर्वार्थ–ज्ञापकाय नमः ।।२०।।
सत्यभामा–वल्लभाय नमः ।।२१।।
सत्राजित्–स्वर्ग–हेतवे नमः ।।२२।।
स्यमन्तक–मणि–हर्त्रे नमः ।।२३।।
शुद्ध–कीर्ति–स्थापकाय नमः ।।२४।।
अक्रूरादि–भक्त–दोष–निवारकाय नमः ।।२५।।
कालिन्दी–पतये नमः ।।२६।।
पाण्डव–राज्य–स्थापकाय नमः ।।२७।।
मित्रविन्दा–पतये नमः ।।२८।।
सत्या–पतये नमः ।।२९।।
भद्रा–पतये नमः ।।३०।।
लक्ष्मणा–पतये नमः ।।३१।।
रोहिणी–पतये नमः ।।३२।।
षोडश–सहस्र–नायिकाधिपतये नमः ।।३३।।

मुरारये नमः ।।३४।।
नरकान्तकाय नमः ।।३५।।
वसुधा-पूजित-चरणाय नमः ।।३६।।
सर्वजनीन-सुख-हेतवे नमः ।।३७।।
पारिजातापहरणाय नमः ।।३८।।
महेन्द्रादि-दुष्टबुद्धि-निवारकाय नमः ।।३९।।
सर्वरत्नकोशादि-पूरित-गृहाय नमः ।।४०।।
रुक्मिण्यादि-स्त्री-मन:परीक्षकाय नमः ।।४१।।
लौकिक-लीला-वाक्य-विशारदाय नमः ।।४२।।
श्रुत्यर्थ-प्रतिपादक-दशदश-पुत्राय नमः ।।४३।।
कलिधर्म-प्रतिपादक-वंशादि-कर्त्रे नमः ।।४४।।
बाणासुर-बलान्त-कर्त्रे नमः ।।४५।।
महादेवादि-सम्मान-हेतवे नमः ।।४६।।
ज्वरादि-दोष-नाशकाय नमः ।।४७।।
प्रह्लादादि-भक्तवंश-रक्षकाय नमः ।।४८।।
दानादिधर्म-बोधकाय नमः ।।४९।।
नृग-मोक्ष-हेतवे नमः ।।५०।।
ब्रह्मण्याय नमः ।।५१।।
पुष्टिमार्ग-प्रवर्तकाय नमः ।।५२।।
यमुना-कर्षण-हेतवे नमः ।।५३।।
स्पर्धादि-दुष्ट-विमोचकाय नमः ।।५४।।
पौण्ड्रक-काशी-राज-हन्त्रे नमः ।।५५।।
देवतान्तर-वर-दृप्त-गर्व-नाशकाय नमः ।।५६।।
काशी-दाहकाय नमः ।।५७।।
दुष्ट-निवास-दोष-नाशकाय नमः ।।५८।।

मुक्ति–हेतवे नमः ।।५९।।
दुःसङ्ग–दृप्त–द्विविदादि–वध–हेतवे नमः ।।६०।।
राज्यादि–दृप्त–कौरव–गर्व–नाशकाय नमः ।।६१।।
मर्यादाभक्ति–दृप्त–भक्त–मोह–नाशकाय नमः ।।६२।।
जीवाधिकार–शास्त्र–गर्व–नाशकाय नमः ।।६३।।
सुधर्मालंकृत–चरणाय नमः ।।६४।।
भक्तापेक्षावभास–हेतवे नमः ।।६५।।
उद्धवादि–बुद्ध्यादि–बुद्ध्यनुसारिणे नमः ।।६६।।
जीव–धर्मावबोधकाय नमः ।।६७।।
हीन–धर्मावलम्बन–जीवकार्य–कर्त्रे नमः ।।६८।।
भक्तज्ञान–हेतवे नमः ।।६९।।
पुष्टि–निमित्त–ज्ञापकाय नमः ।।७०।।
राजसूयादि–प्रवर्तकाय नमः ।।७१।।
शिशुपालादि–भक्त–वैकुण्ठ–प्राप्ति–हेतवे नमः ।।७२।।
दुर्योधनादि–दुष्ट–मान–भङ्ग–हेतवे नमः ।।७३।।
युधिष्ठिरादि–भक्त–गर्व–प्रहारकाय नमः ।।७४।।
प्रद्युम्नादि–यादव–गर्व–प्रहारकाय नमः ।।७५।।
तपस्यादि–दृप्त–शाल्वादि–घातकाय नमः ।।७६।।
पुण्यादि–हीन–धर्म–ज्ञापन–हेतवे नमः ।।७७।।
मुख्य–सिद्धान्त–प्रवर्तकाय नमः ।।७८।।
दन्तवक्त्र–विदूरथादि–मुक्ति–हेतवे नमः ।।७९।।
क्षत्रिय–धर्म–नाट्योपसंहारकाय नमः ।।८०।।
न्यस्त–शस्त्राय नमः ।।८१।।
बलदेव–तीर्थयात्रा–प्रवर्तकाय नमः ।।८२।।
सूत–घातकाय नमः ।।८३।।

पार्थ-सारथये नमः ।।८४।।
अव्यक्त-गीतामृत-महोदधि-प्रवर्तकाय नमः ।।८५।।
कौरव-बलान्त-कर्त्रे नमः ।।८६।।
इतर-पक्षपात-नाशकाय नमः ।।८७।।
सुदामा-रंक-भार्यार्थ-भूम्यानीतेन्द्र-वैभवाय नमः ।।८८।।
हेतुस्थापकाय नमः ।।८९।।
देश-कालादि-धर्म-हेत्वनुसारिणे नमः ।।९०।।
यात्रोत्सव-प्रवर्तकाय नमः ।।९१।।
अखिल-नयनामृताब्धि-पूरकाय नमः ।।९२।।
गोपिकादि-साक्षात्कार-हेतवे नमः ।।९३।।
रुक्मिण्यादि-भक्ति-स्थापकाय नमः ।।९४।।
सन्मार्ग-स्थापकाय नमः ।।९५।।
वसिष्ठादि-सेवित-चरणाय नमः ।।९६।।
वसुदेव-महोत्सव-कर्त्रे नमः ।।९७।।
वसुदेव-ज्ञान-बोधकाय नमः ।।९८।।
देवकी-मनःपीडापनोदकाय नमः ।।९९।।
देवादि-भक्तशापादि-दोष-नाशकाय नमः ।।१००।।
देवकी-मृतापत्य-दात्रे नमः ।।१०१।।
देवकी-स्तनन्धयाय नमः ।।१०२।।
भक्ताचिन्त्य-सुख-दात्रे नमः ।।१०३।।
सुभद्रा-विवाह-हेतवे नमः ।।१०४।।
जनकादि-ज्ञानि-मनोरथ-पूरकाय नमः ।।१०५।।
श्रुतदेवाद्युपासक-सन्मार्ग-बोधकाय नमः ।।१०६।।
अखिल-निगम-निजजन-संस्तुताय नमः ।।१०७।।
सर्वागम्य-स्वरूपाय नमः ।।१०८।।

ऐश्वर्यादि-षड्धर्म-स्थापकाय नमः ।।१०९।।
भक्तदुष्ट-वैभव-नाशकाय नमः ।।११०।।
भक्तसंकट-निवारकाय नमः ।।१११।।
वृकादि-दुष्टघातकाय नमः ।।११२।।
ब्रह्मशिवादि-वन्दित-चरणाय नमः ।।११३।।
सर्वोत्कर्ष-बोधकाय नमः ।।११४।।
विप्र-मृतापत्य-दात्रे नमः ।।११५।।
अर्जुनादि-गर्व-प्रहारकाय नमः ।।११६।।
द्वारिका-नायकाय नमः ।।११७।।
नाना-विलास-विलसित-सुखाब्धये नमः ।।११८।।
निखिल-निजजन-प्रपञ्च-विस्मारकाय नमः ।।११९।।

इत्येवं राजलीलायां नाम्नामष्टादशं शतम् ।।
निरोधलीलामाश्रित्य भक्त्यै भक्ते निरूपितम् ।।१।।
बाललीला-नामपाठात् श्रीकृष्णे प्रेम जायते ।।
आसक्तिः प्रौढलीलाया नामपाठाद् भविष्यति ।।२।।
व्यसनं कृष्णचरणे राजलीलाभिधानतः ।।
तस्मान्नामत्रयं जाप्यं भक्तिप्राप्तीच्छुभिः सदा ।।३।।

।। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचिता त्रिविधनामावली सम्पूर्णा।।

।। श्रीमद्भागवतदशमस्कंधानुक्रमणिका ।।

श्रीमहाप्रभुजी ने दशमस्कन्धानुक्रमणिका सूरदासजी को सुनाई थी. जब प्रथम सूरदासजी श्रीआचार्यचरण के सम्मुख आये तब आपश्री ने आज्ञा करी 'सूर ! कछु भगवत् जस वर्णन करो.' परन्तु सूरदासजी के 'हों हरि सब पतितन को नायक' जैसे स्वयं की हीनता के पद गाने पर श्रीआचार्यजी ने कहा 'सूर व्हे के ऐसो घिघियात काहे कों है ? कछु भगवल्लीला वर्णन करि.' सूरदासजी ने कहा 'महाराज ! मैं कछु भगवल्लीला समुझत नाहीं

हूँ’ तब श्रीमहाप्रभुजी की आज्ञा से सूरदासजी श्रीयमुनाजी में स्नान कर आये एवं नाम-निवेदन के पश्चात् श्रीआचार्यजी ने सूरदासजी को दशमस्कन्धानुक्रमणिका सुनाई. तब सम्पूर्ण दशम स्कन्ध की भगवल्लीला उनके हृदय में स्थापित हुई और सूरदासजी ने ‘चकईरी चलि चरन सरोवर...’ तथा ‘ब्रज भयो महरिके पूत...’ आदि कीर्तन गाये.

राजप्रश्नो हरेर्जन्म-कारणं भूमिसान्त्वनम् ।।
कंसबोधनषट्पुत्र-वधः कंसभयं नृषु ।।१।।
मायाज्ञापनदेवादि-स्तुतिः कृष्णसमुद्भवः ।।
वर्णनं कृष्णरूपस्य वसुदेवस्य संस्तुतिः ।।२।।
देवक्यादिपुराकृत्य-कथनं जगदीशितुः ।।
गोकुले नयनं कन्या-मारणे तद्विभाषणम् ।।३।।
सांत्वनं वसुदेवस्य मोचनं भार्यया सह ।।
कंसदुर्मन्त्रदैत्येषु साधुबालउपद्रवः ।।४।।
प्रादुर्भूते व्रजे कृष्णे व्रजराजमहोत्सवः
मथुरागमनं नंद-वसुदेवसमागमः ।।५।।
पूतनासुपयःपानं नन्दगोपादिविस्मयः ।।
शकटव्यत्ययो दैत्य-चक्रवातवधः शिशोः ।।६।।
संलालने मुखे धात्र्या जृंभणे विश्वदर्शनम् ।।
रामकेशवयोर्नाम्नः करणं केलिरेतयोः ।।७।।
धौर्त्यं गोपवधूगेहे प्रसंगाद्भक्षणं मृदः ।।
दर्शनं विश्वरूपस्य नन्दभाग्यपुराकथा ।।८।।
चौर्यं हैयङ्गवस्याथ बन्धनं दामभिर्बलात् ।।
यमलार्जुनताशापो भङ्गश्चैव स्तुतिस्तयोः ।।९।।
बालक्रीडोपनन्दादि-मन्त्रणं गमनं ततः ।।
वृन्दावने तयोः क्रीडा वयस्यैर्वनचारिणोः ।।१०।।
वत्सासुरस्य च वधो बकाघासुरयोरपि ।।

भोजनं सखिभिस्तीरे यमुनाया हरेर्मुदा ।।११।।
वत्सापहरणं धात्रा कृष्णत्वं वत्सपालयो: ।।
ब्रह्मणो मोहगमनं स्तुति: कृष्णरतिर्गति: ।।१२।।
गोचारणे महाकाय-धेनुकादि वधस्तथा ।।
व्रज आगमनं कृष्ण-गोपीनेत्रमहोत्सव: ।।१३।।
मृतान् विषाम्भपानेन गोपान् हरिरजीवयत् ।।
कालीयदमने स्तोत्रं तद्भार्याणां प्रलापनम् ।।१४।।
ह्रदे कालीयसम्बन्ध-कथनं वह्निमोचनम् ।।
क्रीडाप्रलम्बनिधनं दावाग्नेर्मोचनं गवाम् ।।
वर्षाशरद्वर्णनञ्च गोपीनां वचनामृतम् ।।१५।।
व्रतं गोकुलकन्यानां वस्त्राणां हरणं मुदा ।।
वनभाग्यकथा गोप-प्रार्थना प्रेषणं मखे ।।१६।।
विप्रभार्याप्रसादश्च पश्चात्तापो द्विजन्मनाम् ।।
यागभङ्गो महेन्द्रस्य धृतिर्गोवर्धनस्य च ।।१७।।
सुरेन्द्रगर्वहरणं गर्गगीतस्य वर्णनम् ।।
गोपशंकापगमनम् इन्द्रधेन्वभियाचनम् ।।१८।।
नन्दस्य मोक्षणं गोप-वैकुण्ठागमनं तत: ।।
पञ्चाध्याय्यां निशि क्रीडा सर्पान्नन्दस्य मोक्षणम् ।।१९।।
शंखचूडवध: पश्चाद् गोपीगीतं वृषार्दनम् ।।
कंसनारदसंवाद: कंसाक्रूरकथा तत: ।।२०।।
केशिनो निधनं कृष्णान्नारदर्षिकथा तत: ।।
व्योमासुरवधोऽक्रूरागमनं गोकुलेषु च ।।२१।।
दर्शनानन्दहृष्टात्मा-रोमाञ्चो गद्गदा गिर: ।।
संवादो रामकृष्णाभ्यां वर्णितं कंसचेष्टितम् ।।२२।।
रामकृष्णप्रयाणं च तथा गोपीप्रलापनम् ।।

मथुरागमनं मध्ये ह्रदे कृष्णस्य दर्शनम् ।।२३।।
स्तुतिः पुरगतिः पश्चाद् दर्शनं पुरसंपदः ।।
रजकस्य शिरश्छेदो वायकस्य वरादयः ।।२४।।
सुदाम्नो वरदानञ्च कुब्जासन्दर्शनं हरेः ।।
धनुर्भङ्गः सैन्यवधः कंसदुर्हेतुदर्शनम् ।।२५।।
रंगोत्सवे कुवलयापीड-युद्ध-विघातनम् ।।
दर्शनं रामकृष्णस्य पौराणां प्रेमदर्शनम् ।।२६।।
मल्लानां निधनं रङ्गे कंसस्य सह बंधुभिः ।।
पित्रोश्च सान्त्वनं सर्व-सुहृदां परितोषणम् ।।२७।।
उग्रसेनाभिषेकश्च नंदादिव्रजप्रेषणम् ।।
ईषद्विजातिसंस्कारः पठनं च गुरोर्गृहे ।।२८।।
मृतपुत्रप्रदानं च गुरोः पञ्चजनार्दनम् ।।
पुनरागमनं शौरेर्मधुपुर्यां महोत्सवः ।।२९।।
उद्धवप्रेषणं गोपी-विलाप-परिसांत्वनम् ।।
कुब्जारतिस्तयाक्रूर-प्रेषणं गजसाह्वये ।।३०।।
पाण्डवेषु च वैषम्यं धृतराष्ट्रस्य बोधनम् ।।
इत्येवं दशमस्कन्ध-पूर्वार्धे विनिरूपितम् ।।३१।।
जरासन्धसमानीत-सैन्यस्य बहुशो वधः ।।
जामातृ-वधसंतप्त-जरासंध-चमू-वधः ।।
बहुशः सेनयोद्वेगो द्वारका-दुर्गकारणम् ।।३२।।
यवनस्य वधो दृष्ट्या मुचुकुन्दस्य संस्तुतिः ।।
वरं दत्त्वा ततो म्लेच्छ-वधं कृत्वा धने ततः ।।३३।।
नीयमाने वरैर्दृप्त-जरासंधात्पलायनम् ।।
रैवताद् रेवती-कन्या बलदेव-समर्पणम् ।।३४।।
रुक्मिणीप्रियसंदेश-श्रवणादखिलान् रिपून् ।।

निर्जित्य निर्गमो गेहादम्बिकाया ह्रतिर्बलात् ।।३५।।
चैद्यसान्त्वनमुर्वीशैस्ततो रुक्मिसमागमः ।।
युद्धाक्षेपापराधे च मुण्डनं तस्य कृष्णतः ।।३६।।
रुक्मिणीदुःखशमनं रामवाक्यं च मोक्षणम् ।।
ततो विवाहो रुक्मिण्या विधिवत् स्वपुरे तदा ।।३७।।
प्रद्युम्नोत्पत्ति-कथनं हरणं सूतिकागृहात् ।।
मायावत्योक्तवृत्तान्तः शंबरस्य वधस्ततः ।।३८।।
पुनरागमनं गेहे संतोषो द्वारकौकसाम् ।।
सूर्यात्स्यमन्तकप्राप्तिर्याचनं तस्य वै हरेः ।।३९।।
तत्सम्बन्धात्प्रसेनस्य वधोऽकीर्तिर्हरेस्तथा ।।
तन्मार्जनाथ ऋक्षस्य गेहे गमनमेतयोः ।।४०।।
ज्ञात्वा सुरर्षभं युद्धाज्जाम्बवत्याः समर्पणम् ।।
सत्राजितस्य प्राप्तस्य स्वतो दानं मुरारिणा ।।४१।।
विवाहः सत्यभामाया दत्तायाः प्रीतये हरेः ।।
रामेण सह कृष्णस्य गमनं गजसाह्वये ।।४२।।
अक्रूरकृतवर्मभ्यां प्रेरिताच्छतधन्वनः ।।
सत्राजितवधो मध्ये कृष्णाच्छतधनोर्वधः ।।४३।।
रामस्य मिथिलायात्रा गदाशिक्षा सुयोधने ।।
अक्रूरमणिदानं च शक्रप्रस्थे हरेर्गतिः ।।४४।।
कालिन्द्या संङ्गतिः शौरेर्विवाहः स्वपुरे ततः ।।
मित्रविन्दाह्रतिर्नाग्नजित्युद्वाहनमेव च ।।४५।।
भद्राया लक्ष्मणायाश्च विवाहो मुरघातिना ।।
पितुस्तत्-तनयानां च नरकस्य च घातनम् ।।४६।।
भूमिस्तुति राजकन्या-प्रेषणं स्वपुरे ततः ।।
गत्वा महेन्द्रभवनं पारिजाताह्रतिर्बलात् ।।४७।।

उद्वाहो राजकन्यानां रुक्मिणीकृष्णकौतुकम् ।।
कृष्णभार्याकथा पुत्र-नामान्युद्वाहपर्वणि ।।४८।।
रामाद् रुक्मिवधो द्यूते बाणस्य हरसंकथा ।।
उषास्वप्नकथा चित्रलेखया हरणं हरे: ।।४९।।
पौत्रस्य बन्धनं चापि बाणयादवसंयुगे ।।
कृष्णशंकरयोर्युद्धं ज्वरसंस्तवनं तत: ।।५०।।
बाणबाहुच्छिदा रुद्र-स्तुतिर्बाणाभयं वर: ।।
उषाप्राप्तिर्नृगाख्यानं बलभद्रव्रजागम: ।।५१।।
गोपीविलापो रामस्य स्तुतिर्गोपीभिरेव च ।।
यमुनाकर्षणं काशीपतिपौण्ड्रकघातनम् ।।५२।।
काशीदाह: स्वकृत्यातो द्विविदस्य बलाद्वध: ।।
लक्ष्मणाहरणं राम-विक्रमो गजसाह्वये ।।५३।।
नारदेन हरेर्लीला-दर्शनं गृहमेधिनाम् ।।
आह्निकं वासुदेवस्य राज्ञां विज्ञापनं हरे: ।।५४।।
मंत्रणाद् उद्धवस्येंद्रप्रस्थे गमनमीशितु: ।।
जरासंधवध: स्तोत्रं राज्ञां सत्कृतिरेव च ।।५५।।
राजसूये हरे: पूजा शिशुपालवधस्तथा ।।
दुर्योधनाभिमानस्य भङ्गः प्रद्युम्नशाल्वयो: ।।५६।।
युद्धं त्रिनवरात्रं च हरेरागमनं तत: ।।
शाल्वस्य दन्तवक्त्रस्य तद्भ्रातुर्लीलया वध: ।।५७।।
तीर्थयात्राथ रामस्य मध्ये सूतवधस्तत: ।।
तत्पुत्रस्थापनं तत्र बल्वलस्य वधस्तत: ।।५८।।
यात्रासमस्ततीर्थानामृषिभिर्याजनं बले ।।
भक्तानां जन्मसाफल्यं पृथुकाख्यानमेव च ।।५९।।
सूर्योपरागे निखिलै: कुरुक्षेत्रे समागम: ।।

बन्धुभिर्वसुदेवस्य गोपिका-परिसान्त्वनम् ।।६०।।
कृष्णभार्या-विवाहानां कथनं विस्मयो नृणाम् ।।
ऋषीणां गमनं तत्र कृष्णेन प्रतिपूजनम् ।।६१।।
वसुदेवस्य संप्रश्नो नारदोक्तिरथोत्तरम् ।।
याजनं तस्य ऋषिभि: प्रमोदोऽखिलदेहिनाम् ।।६२।।
वसुदेवस्य विज्ञानं देवक्या: षट्सुतागमे ।।
बलिकृष्णस्तुतिकथा षण्णां गमननिर्गमे ।।६३।।
सुभद्राविजयोद्वाहो मिथिलागमनं हरे: ।।
मैथिलश्रुतदेवाभ्यां पूजनं गतिरेतयो: ।।६४।।
वेदस्तुतिर्हरेर्भक्त्या दारिद्र्यविनिरूपणम् ।।
आशुतोषकथा शम्भोरनर्थोऽस्य वरस्य च ।।६५।।
वृकासुरवधो बुद्धेर्मोचनं गिरिजापते: ।।
हरेरेव सुदेवत्वं भृगुवाक्यैश्च निश्चय: ।।६६।।
मृतपुत्रप्रदानं च विप्रस्य स्वालयाद्धरे: ।।
क्रीडा स्त्रीभिर्हरे: पूजा विरहात् स्त्रीविभाषणम् ।।६७।।
महारथानां नामानि हरेर्वंशावलिस्तथा ।।
यादवानन्त्यमित्येवमुत्तरार्धे निरूपितम् ।।६८।।

।। इति श्रीमद्वल्लभदीक्षितविरचिता श्रीमद्भागवतदशमस्कंधानुक्रमणिका समाप्ता ।।

।। श्रीकृष्णाष्टकम् ।।

श्रीगोप-गोकुल-विवर्धन ! नन्दसूनो !
राधापते ! व्रजजनार्ति-हरावतार ! ।।
मित्रात्मजा-तट-विहारण ! दीनबन्धो !
दामोदरा(!)ऽच्युत ! विभो ! मम देहि दास्यम् ।।१।।

श्रीराधिकारमण ! माधव ! गोकुलेन्द्र-
सूनो ! यदूत्तम ! रमार्चित-पादपद्म ! ।।
श्रीश्रीनिवास ! पुरुषोत्तम ! विश्वमूर्ते !
गोविन्द ! यादवपते ! मम देहि दास्यम् ।।२।।
गोवर्धनोद्धरण ! गोकुलवल्लभाद्य !
वंशोद्भटा(!)ऽऽलय ! हरे(!)ऽखिललोकनाथ ! ।।
श्रीवासुदेव ! मधुसूदन ! विश्वनाथ !
विश्वेश ! गोकुलपते ! मम देहि दास्यम् ।।३।।
रासोत्सवप्रिय ! बलानुज ! सत्त्वराशे !
भक्तानुकम्पित ! भवार्तिहरा(!)दिनाम !।।
विज्ञानधाम ! गुणधाम! किशोरमूर्ते !
सर्वेश ! मङ्गलतनो ! मम देहि दास्यम् ।।४।।
सद्धर्मपाल ! गरुडासन ! यादवेन्द्र !
ब्रह्मण्यदेव ! यदुनन्दन ! भक्तिदान ! ।।
संकर्षणप्रिय ! कृपालय ! देव ! विष्णो !
सत्यप्रतिज्ञ ! भगवन् ! मम देहि दास्यम् ।।५।।
गोपीजन-प्रियतम-क्रिययैकलभ्य !
राधावर ! प्रियवरेण्य ! शरण्यनाथ ! ।।
आश्चर्यबाल ! वरदेश्वर ! पूर्णकाम !
विद्वत्तमाश्रय ! विभो ! मम देहि दास्यम् ।।६।।
कन्दर्प-कोटि-मद-हारण ! तीर्थकीर्ते !
विश्वैकवन्द्य ! करुणार्णव ! तीर्थपाद ! ।।
सर्वज्ञ ! सर्ववरदा(!)ऽऽश्रयकल्पवृक्ष !
नारायणा(!)ऽखिलगुरो ! मम देहि दास्यम् ।।७।।

वृन्दावनेश्वर ! मुकुन्द ! मनोज्ञवेष !
वंशी-विभूषित-कराम्बुज ! पद्मनेत्र ! ।।
विश्वेश ! केशव ! व्रजोत्सव ! भक्तिवश्य !
देवेश ! पाण्डवपते ! मम देहि दास्यम् ।।८।।
श्रीकृष्णस्तव-रत्नमष्टकमिदं सर्वार्थदं वर्ण्यताम् ।
भक्तानां च हितं हरेश्च नितरां यो वै पठेत् पावनम् ।।
तस्यासौ व्रजराज-सूनुरतुलां भक्तिं स्वपादाम्बुजे ।
सत्सेव्ये प्रददाति गोकुलपतिः श्रीराधिकावल्लभः ।।९।।

।। इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितं श्रीकृष्णाष्टकं समाप्तम् ।।

।। श्रीगिरिराजधार्यष्टकम् ।।

भक्ताभिलाषा-चरितानुसारी दुग्धादि-चौर्येण यशो-विसारी ।।
कुमारतानन्दित-घोष-नारिः मम प्रभुः श्रीगिरिराजधारी ।।१।।
व्रजाङ्गना-वृन्द-सदा-विहारी अङ्गैर्गुहाङ्गारतमोपहारी ।।
क्रीडा-रसावेश-तमो-ऽभिसारी मम प्रभुः श्रीगिरिराजधारी ।।२।।
वेणुस्वनानन्दित-पन्नगारी रसातलानृत्यपद-प्रचारी ।।
क्रीडन् वयस्याकृति-दैत्यमारी मम प्रभुः श्रीगिरिराजधारी ।।३।।
पुलिन्ददाराहित-शम्बरारी रमासदोदार-दयाप्रकारी ।।
गोवर्धने कन्द-फलोपहारी मम प्रभुः श्रीगिरिराजधारी ।।४।।
कलिन्दजा-कूल-दुकूलहारी कुमारिका-कामकला-वितारी ।।
वृन्दावने गोधन-वृन्द-चारी मम प्रभुः श्रीगिरिराजधारी ।।५।।
व्रजेन्द्र-सर्वाधिक-शर्मकारी महेन्द्र-गर्वाधिक-गर्वहारी ।।
वृन्दावने कन्द-फलोपहारी मम प्रभुः श्रीगिरिराजधारी ।।६।।
मनःकलानाथ-तमो-विदारी वंशीरवाकारित-तत्कुमारी ।।
रासोत्सवोद्वेल्ल-रसाब्धिसारी मम प्रभुः श्रीगिरिराजधारी ।।७।।

मत्तद्विपोद्दाम-गतानुकारी लुण्ठत्प्रसूनाप्रपदीनहारी ।।
रामोरस-स्पर्श-कर-प्रसारी मम प्रभुः श्रीगिरिराजधारी ।।८।।

।। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितं श्रीगिरिराजधार्यष्टकं सम्पूर्णम् ।।

।। श्रीगोपीजनवल्लभाष्टकम् ।।

नवाम्बुदानीक-मनोहराय प्रफुल्ल-राजीव-विलोचनाय।।
वेणुस्वनैर्मोदित-गोकुलाय नमोऽस्तु गोपीजनवल्लभाय ।।१।।
किरीट-केयूर-विभूषिताय ग्रैवेय-माला-मणि-रञ्जिताय ।।
स्फुरच्चलत्काञ्चन-कुंडलाय नमोऽस्तु गोपीजनवल्लभाय ।।२।।
दिव्याङ्गना-वृन्द-निषेविताय स्मित-प्रभा-चारु-मुखाम्बुजाय ।।
त्रैलोक्य-सम्मोहन-सुन्दराय नमोऽस्तु गोपीजनवल्लभाय ।।३।।
रत्नादि-मूलालय-संश्रिताय कल्पद्रुमच्छाय-समाश्रिताय ।।
हेमस्फुरन्मण्डल-मध्यगाय नमोऽस्तु गोपीजनवल्लभाय ।।४।।
श्रीवत्सरोमावलि-रञ्जिताय वक्षःस्थले कौस्तुभ-भूषिताय ।।
सरोजकिञ्जल्क-निभांशुकाय नमोऽस्तु गोपीजनवल्लभाय ।।५।।
दिव्याङ्गुलीयाङ्गुलि-रञ्जिताय मयूर-पिच्छच्छ-विशोभिताय ।।
वन्य-स्रजालंकृत-विग्रहाय नमोऽस्तु गोपीजनवल्लभाय ।।६।।
मुनीन्द्र-वृन्दैरभिसंस्तुताय क्षरत्पयो-गोकुल-गोकुलाय ।।
धर्मार्थकामामृत-साधकाय नमोऽस्तु गोपीजनवल्लभाय ।।७।।
एनस्तमःस्तोम-दिवाकराय भक्तस्य चिन्तामणि-साधकाय ।।
अशेष-दुःखामय-भेषजाय नमोऽस्तु गोपीजनवल्लभाय ।।८।।

।। इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितं श्रीगोपीजनवल्लभाष्टकं समाप्तम् ।।

।। श्रीमधुराष्टकम् ।।

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम् ।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।१।।

वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरं वलितं मधुरम् ।।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।२।।
वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुर: पाणिर्मधुर: पादौ मधुरौ ।।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।३।।
गीतं मधुरं पीतं मधुरं भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम् ।।
रूपं मधुरं तिलकं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।४।।
करणं मधुरं तरणं मधुरं हरणं मधुरं रमणं मधुरम् ।।
वमितं मधुरं शमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।५।।
गुञ्जा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा वीची मधुरा ।।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।६।।
गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं मुक्तं मधुरम् ।।
दृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।७।।
गोपा मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा ।।
दलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुरापतेरखिलं मधुरम् ।।८।।

।। इति श्रीमद्वल्लभाचार्यप्रकटितं श्रीमधुराष्टकं सम्पूर्णम् ।।

।। श्रीपरिवृढाष्टकम् ।।

कलिन्दोद्भूतायास्तटमनुचरन्तीं पशुपजां
रहस्येकां दृष्ट्वा नव-सुभग-वक्षोज-युगलाम् ।।
दृढं नीविग्रन्थिं श्लथयति मृगाक्ष्या हठतरं
रति-प्रादुर्भावो भवतु सततं श्रीपरिवृढे ।।१।।
समायाते स्वस्मिन् सुर-निलय-साम्यं गतवति
व्रजे वैशिष्ट्यं यो निज-पदगताब्जांकुश-यवै: ।।
अकार्षीत् तस्मिन् मे यदुकुल-समुद्भासित-मणौ
रति-प्रादुर्भावो भवतु सततं श्रीपरिवृढे ।।२।।

‘हिही-ही-हींकारान् प्रतिपशु वने कुर्वति सदा
नमद्-ब्रह्मेशेन्द्र-प्रभृतिषु च मौनं धृतवति ।।
मृगाक्षीभि: स्वेक्षा-नव-कुवलयैरर्चित-पदे
रति-प्रादुर्भावो भवतु सततं श्रीपरिवृढे ।।३।।
सकृत् स्मृत्वा कुम्भी यमिह परमं लोकमगमत्
चिरं ध्यात्वा धाता समधिगतवान् यं न तपसा ।।
विभौ तस्मिन् मह्यं सजल-जलदाली-निभ-तनौ
रति-प्रादुर्भावो भवतु सततं श्रीपरिवृढे ।।४।।
पराकाष्ठा प्रेम्ण: पशुप-तरुणीनां क्षितिभुजां
सदृप्तानां त्रासास्पदम् अखिल-भाग्यं यदुपते: ।।
विभुर्यस्तस्मिन् मे दर-विकच-जम्बालज-मुखे
रति-प्रादुर्भावो भवतु सततं श्रीपरिवृढे ।।५।।
दर-प्रादुर्भूत-द्विज-गण-मह:- पूरित-वने
चरन् कुह्वां राका-रुचिरतर-शोभाधिक-रुचि: ।।
हरिर्यस्तस्मिन् स्त्री-गण-परिवृतो नृत्यति सदा
रति-प्रादुर्भावो भवतु सततं श्रीपरिवृढे ।।६।।
स्फुरद्-गुञ्जा-पुञ्जाकलित-निजपादाब्जविलुठत्-
स्रजि श्यामा-कामास्पद-पद-युगे मेचक-रुचि: ।।
वराङ्गे शृङ्गारं दधति शिखिनां पिच्छ-पटलै
रति-प्रादुर्भावो भवतु सततं श्रीपरिवृढे ।।७।।
दुरन्तं दु:खाब्धिं हसित-सुधया शोषयति यो
यदास्येन्दुर्गोपी-नयन-नलिनानन्द-करणम् ।।
अनङ्ग: साङ्गत्वं व्रजति मम तस्मिन् मुररिपौ
रति प्रादुर्भावो भवतु सततं श्रीपरिवृढे ।।८।।
इदं य: स्तोत्रं श्रीपरिवृढ- समीपे पठति वा

शृणोति श्रद्धावान् रति-पति-पितुः पादयुगले ।।
रतिं प्रेप्सुः शश्वत् कुवलय-दल-श्यामल-तनौ
रतिः प्रादुर्भूता भवति न चिरात् तस्य सुदृढा ।।९।।

।। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितं श्रीपरिवृढाष्टकं समाप्तम् ।।

।। श्रीगोकुलाष्टकम् ।।

श्रीमद्गोकुलसर्वस्वं श्रीमद्गोकुलमण्डनम् ।।
श्रीमद्गोकुलदृक्तारा श्रीमद्गोकुलजीवनम् ।।१।।
श्रीमद्गोकुलमात्रेश श्रीमद्गोकुलपालकः ।।
श्रीमद्गोकुललीलाब्धिः श्रीमद्गोकुलसंश्रयः ।।२।।
श्रीमद्गोकुलजीवात्मा श्रीमद्गोकुलमानसम् ।।
श्रीमद्गोकुलदुःखघ्नः श्रीमद्गोकुलवीक्षितः ।।३।।
श्रीमद्गोकुलसौन्दर्यं श्रीमद्गोकुलसत्फलम् ।।
श्रीमद्गोकुलगोप्राणं श्रीमद्गोकुलकामदः ।।४।।
श्रीमद्गोकुलराकेशः श्रीमद्गोकुलतारकः ।।
श्रीमद्गोकुलपद्मालिः श्रीमद्गोकुलसंस्तुतः ।।५।।
श्रीमद्गोकुलसङ्गीतः श्रीमद्गोकुललास्यकृत् ।।
श्रीमद्गोकुलभावात्मा श्रीमद्गोकुलपोषकः ।।६।।
श्रीमद्गोकुलहृत्स्थानं श्रीमद्गोकुलसंवृतः ।।
श्रीमद्गोकुलदृक्पुष्टं श्रीमद्गोकुलमोदितः ।।७।।
श्रीमद्गोकुलगोपीशः श्रीमद्गोकुलललितः ।।
श्रीमद्गोकुलभोग्यश्री श्रीमद्गोकुलसर्वकृत् ।।८।।
इमानि श्रीगोकुलेशनामानि वदने मम ।
वसन्तु सततं चैव लीलाश्च हृदये सदा ।।९।।

।। इति श्रीविठ्ठलेश्वरप्रभुचरणविरचितं श्रीगोकुलाष्टकं सम्पूर्णम्।।

।। राधाप्रार्थनाचतुःश्लोकी ।।

कृपयति यदि राधा बाधिताशेषबाधा
किमपरमवशिष्टं पुष्टिमर्यादयोर्मे ।।
यदि वदति च किञ्चित् स्मेरहासोदितश्रीर्
द्विजवरमणिपंक्त्या मुक्तिशुक्त्या तदा किम् ।।१।।
श्यामसुन्दरशिखण्डशेखर स्मेरहास्यमुरलीमनोहर ।।
राधिकारसिक मां कृपानिधे स्वप्रियाचरणकिंकरी कुरु ।।२।।
प्राणनाथ वृषभानुनन्दिनी श्रीमुखाब्जरसलोलषट्पद ।।
राधिकापदतले कृतस्थितिस्त्वां भजामि रसिकेन्द्रशेखर ।।३।।
संविधाय दशने तृणं विभो प्रार्थये व्रजमहेन्द्रनन्दन ।।
अस्तु मोहन तवातिवल्लभा जन्मजन्मनि मदीश्वरी प्रिया ।।४।।

।। इति श्रीविठ्ठलेश्वरविरचिता राधाप्रार्थनाचतुःश्लोकी सम्पूर्णा ।।

।। श्रीगोकुलेशाष्टकम् ।।

नन्द–गोप–भूप–वंश–भूषणं विदूषणं
भूमि–भूति–भूरि–भाग्य–भाजनं भयापहम् ।।
धेनु–धर्म–रक्षणावतीर्ण–पूर्ण–विग्रहं
नीलवारि–वाहकान्ति–गोकुलेशमाश्रये ।।१।।
गोप–बाल–सुन्दरी–गणावृतं कला–निधिं
रास–मंडली–विहार–कारि–काम–सुन्दरम् ।।
पद्मयोनि–शंकरादि–देव–वृन्द–वन्दितं
नीलवारि–वाहकान्ति–गोकुलेशमाश्रये ।।२।।
गोपराज–रत्नराजि–मन्दिरानुरिङ्गणं
गोपबाल–बालिका–कलानुरुद्ध–गायनम्।।

सुन्दरी–मनोज–भाव–भाजनाम्बुजाननं
नील–वारि–वाहकान्ति–गोकुलेशमाश्रये ।।३।।
कंस–केशि–कुञ्जराज–दुष्ट–दैत्य–दारणम्
इन्द्र–सृष्ट–वृष्टि–वारि–वारणोध्दृताचलम् ।।
कामधेनु–कारिताभिधान–गान–शोभितं
नील–वारि–वाहकान्ति–गोकुलेशमाश्रये ।।४।।
गोपिका–गृहान्त–गुप्त–गव्य–चौर्य–चञ्चलं
दुग्धभाण्ड–भेदभीत–लज्जितास्य–पंकजम् ।।
धेनु–धूलि–धूसराङ्ग–शोभि–हार–नूपुरं
नील–वारि–वाहकान्ति–गोकुलेशमाश्रये ।।५।।
वत्स–धेनु–गोप–बाल–भीषणास्यवह्निपं
केकिपिच्छ–कल्पितावतंस–शोभिताननम् ।।
वेणुवाद्य–मत्त–घोष–सुन्दरी–मनोहरं
नील–वारि–वाहकान्ति–गोकुलेशमाश्रये ।।६।।
गर्वितामरेन्द्रकल्प–कल्पितान्न–भोजनं
शारदारविन्द–वृन्द–शोभि–हंसजारतम् ।।
दिव्यगन्ध–लुब्धभृङ्ग–पारिजात–मालिनं
नील–वारि–वाहकान्ति–गोकुलेशमाश्रये ।।७।।
वासरावसान–गोष्ठ–गामि–गो–गणानुगं
धेनुदोह–देह–गेह–मोह–विस्मयक्रियम् ।।
स्वीय–गोकुलेशदान–दत्त–भक्त–रक्षणं
नील–वारि–वाहकान्ति–गोकुलेशमाश्रये ।।८।।

।। इति श्रीरघुनाथजीकृतं श्रीगोकुलेशाष्टकं सम्पूर्णम् ।।

।। श्रीगोपीजनवल्लभाष्टकम् ।।

सरोज–नेत्राय कृपा–युताय मन्दार–माला–परिभूषिताय ।।
उदार–हासाय लसन्मुखाय नमोस्तु गोपीजनवल्लभाय ।।१।।
आनन्द–नन्दादिक–दायकाय बकीबक–प्राण–विनाशकाय ।।
मृगेन्द्र–हस्ताग्रजभूषणाय नमोस्तु गोपीजनवल्लभाय ।।२।।
गोपाल–लीला–कृत–कौतुकाय गोपालकाजीवन–जीवनाय ।।
भक्तैक–गम्याय नवप्रियाय नमोस्तु गोपीजनवल्लभाय ।।३।।
मथान–भण्डाखिल–भञ्जनाय हैयङ्गवीनाशन–रञ्जनाय ।।
गोस्वादुदुग्धामृत–पोषिताय नमोस्तु गोपीजनवल्लभाय ।।४।।
कलिन्दजा–कूल–कुतूहलाय किशोर–रूपाय मनोहराय ।।
पिशङ्ग–वस्त्राय नरोत्तमाय नमोस्तु गोपीजनवल्लभाय ।।५।।
धराधराभाय धराधराय शृङ्गार–हारावलि–शोभिताय ।।
समस्त–गर्गोक्ति–सुलक्षणाय नमोस्तु गोपीजनवल्लभाय ।।६।।
इभेन्द्र–कुम्भस्थल–खण्डनाय विदेश–वृन्दावन–मण्डनाय ।।
हंसाय कंसासुर–मर्दनाय नमोस्तु गोपीजनवल्लभाय ।।७।।
श्रीदेवकी–सूनु–विमोक्षणाय क्षत्तोद्धवाक्रूर–वर–प्रदाय ।।
गदासिशंखाब्ज–चतुर्भुजाय नमोस्तु गोपीजनवल्लभाय ।।८।।

।। इति श्रीहरिदासोक्तं(श्रीहरिरायजीविरचितं)श्रीगोपीजनवल्लभाष्टकं सम्पूर्णम् ।।

।। जन्मवैफल्यनिरूपणाष्टकम्।।

नाश्रितो वल्लभाधीशो न च दृष्टा सुबोधिनी ।।
नाराधि राधिकानाथो वृथा तज्जन्म भूतले ।।१।।
न गृहीतं हरेर्नाम नात्माद्यखिलमर्पितम् ।।
न कृष्णसेवा विहिता वृथा तज्जन्म भूतले ।।२।।

न लीलाचिन्तनं नैव दीनता विरहाद्धरेः ।
न वा कृष्णाश्रयः पूर्णो वृथा तज्जन्म भूतले ।।३।।
न नीता वार्तया घस्त्राः साधवो नैव सेविताः ।।
न गोविन्दगुणा गीता वृथा तज्जन्म भूतले ।।४।।
न कृष्णरूपसौन्दर्ये मनो नैव विरागिता ।
न दुःसंगपरित्यागो वृथा तज्जन्म भूतले ।।५।।
न भक्तिः पुष्टिमार्गीया न निःसाधनता हृदि ।
न विस्मृतिः प्रपञ्चस्य वृथा तज्जन्म भूतले ।।६।।
न धर्मपरता नैव धर्ममार्गे मनोगतिः ।।
न भक्तिर्ज्ञानवैराग्ये वृथा तज्जन्म भूतले ।।७।।
न निजस्वामिविरह-परितापो न भावना ।।
न दैन्यं परमं यस्य वृथा तज्जन्म भूतले ।।८।।

।। इति श्रीहरिदासोदितं(श्रीहरिरायजीविरचितं)जन्मवैफल्यनिरूपणाष्टकं सम्पूर्णम् ।।

।। वृत्रासुरचतुःश्लोकी ।।

श्रीमद्भागवत में भगवान् की दशविध लीलाओं का वर्णन किया गया है. श्रीमद्भागवत का षष्ठ स्कन्ध प्रभु की पोषणलीला का निरूपक है. पोषण का अर्थ है भगवान् का अनुग्रह अर्थात् पुष्टि.

इस स्कन्ध के ११ वें अध्याय के २४ से २७ तक के चार श्लोकों में वृत्रासुर ने भगवान् की स्तुति की है. जिसे वृत्रासुर चतुःश्लोकी कहा जाता है. इन चार श्लोकों में पुष्टिमार्गीय धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का निरूपण हुआ है. श्रीवल्लभाचार्यचरण एवं श्रीविठ्ठलेशप्रभुचरण ने इस पर विवरण भी प्रकट किया है.

अतः प्रत्येक पुष्टिमार्गी के लिए पुष्टिभाव के उद्बोधनार्थ वृत्रासुरचतुःश्लोकी अवश्य ही पठनीय एवं स्मरणीय है.

अहं हरे तव पादैकमूल-दासानुदासो भवितास्मि भूयः ।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणानां गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः ।।१।।
न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य कांक्षे ।।२।।
अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः ।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम् ।।३।।
ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः ।।
त्वन्माययात्मात्मजदारगेहेष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात् ।।४।।

।। इति श्रीमद्भागवतषष्ठस्कन्धस्था वृत्रासुरचतुःश्लोकी समाप्ता ।।

आश्रय का पद

भरोसो दृढ इन चरनन केरो ।।
श्रीवल्लभनखचन्द्र छटा बिनु सब जग मांझ अंधेरो ।।१।।
साधन और नहीं या कलिमें जासों होत निवेरो ।।
'सूर' कहा कहे द्विविध आंधरो बिना मोलको चेरो ।।२।।